Title.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

# अष्टछापी कवियों का रासलीला वर्णन एवं श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी

मल

१३२९

( गुजरात विश्वविद्यालय की पी-एच. डी की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध )

प्रज्ञाबहन अंबाप्रसाद शुक्ल
एम. ए; एम. एड; साहित्य रत्न

Guj. Uni. Library
T1329

निर्देशक
डॉ. अरविंद टी. जोशी
एम. ए; पी-एच. डी.
हिन्दी विभाग
एच. के. आर्ट्स कॉलेज-अहमदाबाद

ગુજરાત યુનિવર્સિટી
લાયબ્રેરી
અમદાવાદ

Content

।। श्री गणेशाय नमः ।।

अष्टछापी कवियों का रासलीला वर्णन एवं श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी

अ नु क्र म णि का


| क्रम | | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| भूमिका | | विषय की परिधि । | 1 से 9 |
| अध्याय प्रथम | | रास की उत्पत्ति एवं विकास । | 10 से 25 |
| अध्याय द्वितीय | | ... ... ... | 26 से 66 |
| | ॥अ॥ | श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का महत्व । | |
| | ॥आ॥ | श्रीमद्भागवत में गोपियों के प्रेम का स्वरूप। | |
| | ॥इ॥ | मुरली का महत्व। | |
| | ॥ई॥ | गोपीगीत में चित्रित प्रेम का महत्व लीलागान, प्राकट्य और महारास। | |
| अध्याय तृतीय | | अष्टछापी कवियों की कीर्तन सेवा में रास वर्णन। | 67 से 72 |
| अध्याय चतुर्थ | | अष्टछापी कवियों के रास वर्णन की मौलिकता। | 73 से 138 |

Content

## अनुक्रमणिका


| क्रम | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| अध्याय पंचम | पुष्टि संप्रदाय में रास का स्वरूप और रास की वर्तमान स्थिति। | 139 से 145 |
| अध्याय षष्ठ | उपसंहार। | 146 से 149 |
| संदर्भ सूचि | ... ... ... | 150 से 154 |

Chapter — 1



अध्याय प्रथम

## —: रास की उत्पत्ति एवं विकास :—

"रास" शब्द से प्रथम दृष्टि से यह समझ में आता है कि स्त्रियों का मंडलाकार नृत्य जो वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ किया जाता हो। रास प्रायः सभी प्रदेशों में सामान्य होता है। रास का प्रचार अधिक रूप से "गुजरात और सौराष्ट्र"[1] में ज्यादा है। गुजरात से अधिक सौराष्ट्र में रास का प्रचार अधिक प्रमाण में है। मेले का महत्व सौराष्ट्र में अधिक है और ऐसे समय पर किसान तथा अन्य ग्राम्यजन वहाँ जाकर रास-गरबा का आयोजन करते हैं। यहाँ आम जनता के मनोरंजन का एक सुंदर तथा विशिष्ट प्रकार का साधन है। आज रास का जो स्वरूप गुजरात एवं सौराष्ट्र में देखा जाता है, उसका प्राचीन रूप तो श्रीमद्भागवत में है या उससे भी प्राचीन हो सकता है। कहा जाता है कि एक बार पार्वतीजी ने नृत्य किया था श्रीशंकर को प्रसन्न करने के लिए जिसे लास्य कहते हैं, और उसी लास्य का आज की "गरबी" विकसित रूप है। "रास" शब्द से गेय प्रकार की रचना समझी जाती है। "रासु" यह "रास" शब्द की प्रथमा, एकवचन का अपभ्रंशकालीन रूप मात्र है। "रासो" वह अंतमें स्वरवाला "रासकः" का प्राकृत "रासओ" अपभ्रंश "रासउ"

---

1. आज जो गुजरात है, जिसमें सौराष्ट्र मिला हुआ है, पहले गुजरात और सौराष्ट्र का अलग राज्य था, बादमें महागुजरात बना जिसमें दोनों को एक कर दिया गया, आज उसे गुजरात ही कहते हैं।

द्वारा निष्पन्न रूप है। इस प्रकार "रास" और "रासक" ये दो संज्ञाएँ सरलता से प्राप्त हो सकती है। "रास" शब्द का उपयोग आतिप्राचीन उद्योतनसूरि की प्राकृत गद्यपद्यात्मक "कुवलयमाला" नामक गद्यगाथा (शक 700 - संवत 835 - 779 सन) में हुआ है।[1] इस प्रकार भी शुद्ध साहित्य स्वरूपात्मक "रासक" शब्द का प्रामाणिक प्रयोग तो अब्दूर रहेमान द्वारा रचित "संदेश रासक" में मिलता है (ई.स. बारहवीं शताब्दी)[2] विजयसेनसूरि द्वारा रचित "रेवंतगिरिरासु" के अंत में "रंगिहि ए रमइ जो रासु"[3] ऐसा रास नामक साहित्य प्रकार रंगपूर्वक खेलने की - समूह में गाने की चीज़ है - ऐसा ख़्याल देते हैं। तात्पर्य यह कि इस प्रकार की रचनाओं के मूल में नृत्त प्रकार पड़ा हुआ है। पौराणिक साहित्य में - श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की रासलीला प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से "रास" कितना पुराना है, इसका मूल दूसरी शताब्दी में है ऐसा खोज द्वारा स्वीकार हुआ है। "हरिवंशपुराण" में बलराम की आज्ञा से, उस बलदेव के

---

1. गुजराती साहित्य नो इतिहास:- ग्रंथ 1. रास अने फागु साहित्य
   ले:- के. का. शास्त्री
2. गुजराती साहित्य नो इतिहास:- ग्रंथ 1. रास अने फागु साहित्य
   ले:- के. का. शास्त्री
3. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह :- पृष्ठ 7

और उनकी पत्नी रेवती देवकी के दर्शन करने आई हुई अप्सराओं ने कृष्ण और बलराम ने की हुई बाल क्रीड़ा को वस्तु रूप में लेकर हसते हसते रास किया।[1] जब अप्सराओं का यह रास देखा तब बलदेव अपनी पत्नी के साथ, कृष्ण अपनी पत्नी सत्याके साथ, अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा के साथ और दूसरे वहाँ जो उपस्थित थे वे पुत्र तथा दूसरे यादव "रास" खेलते खलते इतने तल्लीन हो गये कि जिसके कारण जगत हर्षान्वित हुआ और निष्पाप बन गया।[2] इस स्थल पर आये हुए नारदजी जो रास प्रणेता हैं, वे भी नाचने लगे। नारदजी को रास प्रणेता कहा है। रास पूरा हुआ तब नारदजी का हाथ पकड़कर कृष्ण समुद्र में सभी के साथ खेलने कूदने लगे ... आदि कथा भी हरिवंशपुराण में दी गई है। स्त्री-स्त्री और पुरूष-स्त्री ऐसे दो प्रकार के रास खेले जानेका संकेत उसमें मिलता है। आगे जाकर "छलिक्य" नामक गेय गांधर्वगान के समय नारदजी ने वीणा ली, कृष्ण ने हल्लीशक का प्रारंभ किया, अर्जुन ने वीणा बजाना शुरू किया और अन्य अप्सराओं ने विविध वाद्य बजाना शुरू किया।

---

1. चक्रुर्हसन्त्यश्च तथैव रासं तद्देशभाषाकृतिवेषयुक्ताः।
सहस्ततालं ललितं सलीलं। वरांगना मंगलसंभृतांगयः।। [हरिवंश 2-89-7]

2. तौ राससक्तैरभिकूर्दमानैर्यदुप्रवीरैरमरप्रकाशैः।
हर्षान्वितं वीर जगत्तथाभूत शेमुश्च पापानि जनेन्द्रसूनो ।।

[हरिवंशपुराण - 2-89-22]

किया।[1] इस प्रकार "नृत्त" के साथ संबंध रखनेवाली तीन महत्व की संज्ञाओं का निर्देश "हरिवंशपुराण" में मिलता है। इसी हरिवंशपुराण में गोपांगनाओं के साथ विहार का सूचन भी मिलता है जहाँ वर्तुलाकार में रही हुई गोपियों के मंडलों से शोभित कृष्ण चंद्रयुक्त शारदी रात्रियों में आनंद करते बताये गये हैं।[2] टीकाकार नीलकंठ इस स्थल पर चंद्राकार मंडलों से "हल्लीसक" - क्रीडन और एक पुरूष का अनेक स्त्रीओं के साथ का रास क्रीडन ऐसे दो भिन्न प्रकार के क्रीडन प्रकार की ओर संकेत करते हैं।[3] जबकि हल्लीसक नृत्य विशेष कृष्णलीलासे

---

1. आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रदृष्टो भगवानुपेन्द्रः।
   छालिक्य गेयं बहुसंनिधानं यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति ।।
   जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड्जग्रामरागादिसमाधियुक्ताम् ।
   हल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः सवंश घोषं मरदेव पार्थः ।।
   मृगंगुरुः वाद्यानपरांश्च वाद्यान्वराप्सरस्ता जगृहुः प्रतीताः।

   ॥हरिवंशपुराण 2.8,9.67 से 68 तक॥

2. एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः।
   शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ।।

   ॥हरिवंशपुराण - 2.20.35॥

3. चक्रवालैः मंडलैः हल्लीसकक्रीडनम्। एकस्य पुंसो बहुभिः
   कीडनं सेव रासक्रीडा। गोपीनां मंडली नृत्यबन्धने हल्लीसकं विदुः ।।

   (टीकाकार नीलकंठ)

संबंधित है तब ईसा के पूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी के महाकवि भास ने अपने "बालचरित" नाटक में दामोदर कृष्ण गोपांगनाओं के साथ हल्लीसक खेलने आते हैं ऐसा उल्लेख करते हैं। उस समय एक गोपाल "हल्लीसक देखें" ऐसा कहता है, उसके बाद भगवान दामोदर गोपांगनाओं को "हल्लीसक" नृत्तबंध का आयोजन करने की आज्ञा करते हैं और संकर्षण दामक तथा मेघनाद नामक गोपों को आतोद्य बजाने को कहते हैं। भास को समूह नृत्त की तरह वैयक्तिक नृत्त भी अभिष्ट है। कालियमद मर्दन के बाद कालिय की पाँच फन पर उन्हें दबाते हुए कृष्ण "हल्लीसक" प्रकार का क्रीडन करते हैं।[1] तात्पर्य यह कि भारत में "नृत्त" और महत्व का "गेय" का ख्याल "हरिवंश" और भास के "बालचरित" में "हल्लीसक" तथा "छालिकय गेय" तथा "रास" के संबंध में मिलता है। इसी प्रकार तामिल साहित्य में भी कृष्ण की संज्ञा "मेयोन" या "मयवनू" है। उनको संगीत प्रिय था। उनकी प्रिया राधा "नपिन्नइ" ‖तामिल नाम‖ तथा बड़े भाई - बलराम के साथ "कुरवइ कूट्टु" नामक नृत्त खेला हुआ मिलता है। "सिलप्पदिकरम्" नामक तामिल भाषा के प्राचीन ग्रंथ में कृष्ण के ग्यारह प्रकार के नृत्तों का निर्देश मिलता है।[2]

---

1. कालिअस्स पंच फणाणि अक्कमन्तो हळीषअंपकोळदि ।

‖ बालचरित - पृ. 51‖

2. Indian Culture Vol.IV - सामयिक पृ. 267 - 7।

तथा Gita - Govinda with Abhinaya -

(Introduction - Page I) के. वासुदेव शास्त्री

"हरिवंश" के बाद के पुराणसाहित्य में "रास" के और काव्यशास्त्र के संस्कृत ग्रंथों में "रास और हल्लीसक" के अनेक उल्लेख मिलते हैं। "ब्रम्हपुराण" में कृष्ण के साथ गोपांगनाओं का रास जो थोडासा था, उसका उल्लेख मिलता है।[1] ऐसा ही मिलता-जुलता वर्णन "विष्णुपुराण" में मिलता है।[2] "रास" के लिए "रास गोष्ठी" शब्द का भी प्रयोग हुआ है। वास्तव में यह नृत्त की प्रक्रिया ही है जिसमें चौड़ा, गोल, कोमल, एक हाथ मात्र ऊँचा शंकु जमीन में गाड़कर उसके पर कूदकर एक दूसरे के साथ हाथ से वर्तुलाकार घुमने का होता है।[3] श्रीमद्भागवत और ब्रम्हवैवर्तपुराण में भगवान कृष्ण और गोपांगनाओं के साथ के अनेक वर्णन मिलते हैं। भागवत में रासगोष्ठी शब्द अनेक बार प्रयोग

---

1. ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम्।
   ररास रासगोष्ठीभिरूदारचरितो हरिः ॥
   ॥ब्रम्हपुराण - 188-31॥

2. ताभिः [redacted] प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम्।
   ररास रासगोष्ठीभिरूदारचरितो हरिः ॥
   ॥विष्णुपुराण - 5.13.48॥

3. पृथु सुवृत्तं मसृणं वितस्तिमात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शंकुम् ।
   आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरं तु हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥
   "हरिवंश पुराण" पर नीलकंठ की टीका में —
   — रासगोष्ठी की व्याख्या।

में आया है जो "रासनृत्त" का पर्याय है। इसके साथ साथ "हरिवंश" में "छालिक्य गेय" का भी संकेत मिलता है। "भरतनाट्यशास्त्र" के टीकाकार अभिनवगुप्ताचार्य ने "चिरंतनों" की कहीं, उद्धृत की हुई कारिकाओं में "हल्लीसक" और "रास" या "रासक" गेय प्रकार के नृत्त प्रकार है - ऐसा प्रमाण रूप में मिलता है।[1] यहाँ कुछ व्याख्याएँ दी गई है जिनमें - जो वर्तुलाकार रूप में नृत्त होता है उसे हल्लीसक कहते हैं और उसमें एक ही नायक होता है, शेष स्त्रियाँ। श्रीकृष्ण और अनेक गोपियाँ मिलकर विविध प्रकार के ताल और लयवाला 64 जोड़ावाला नृत्त जो किया, उसे अन्य लोगों ने देखा उसका नाम "रासक"।

"हल्लीसक" का संकेत करनेवाला भास अति प्राचीन है। "रास" का इतना पुराना उल्लेख प्राप्त नहीं होता। "काव्यालंकार" भामह ने (सन 540 से 550 के लगभग) नाटक, द्विपदी, शम्या, रासक, स्कंधक, के अभिनय का निर्देश किया है जो सबसे पहला है।[2] आठवीं शताब्दी में बाणभट्ट का भी

---

1. मंडलेन तु यन्नृत्तं हल्लीसकमिति स्मृतम् ।
एकस्तत्र तु नेता स्याद गोपस्त्रीणां यथा हरिः ।।
अनेक नर्तकीयोज्यं चित्रताललयान्वितम् ।
आचतुःषष्टियुगलाद् रासकं मसृणोद्धतम् ।। (गायकमाला पृ. 18)

2. नाटकं द्विपदी -शम्या - रासक - स्कन्धकादि यत् ।
उक्तं तदभिनेयार्थमुक्तोऽन्यैस्तस्य विस्तरः ।। 1-24 ।।
(काव्यालंकार)

हलभीसक का ख़्याल था, इसीकारण से उनके समय में मंडली में रासनृत्त - रासकनृत्त गेय कृतिवाले अभिनीत होते थे। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार उनके समय में रासनृत्त प्रचलित था। इसके बाद दसवीं-ग्यारवीं शताब्दी में उज्जैन के अधिपति मुंज के समकालीन धनंजय की रचना "दशरूपक" की टीका जो उनके छोटे भाई धनिक ने की है, उसमें नृत्त भेदों में "रासक" को गिनाकर रूपकों में से एक कहा है।[1] उज्जैन के अधिपति श्रीभोज भी लास्य, तांडव, छलिक और संपा इन चार के साथ हल्लीसक और रास को जोड़कर छे नृत्त प्रकार कहते हैं।[2] हल्लीसक और रासक को वाग्भट्ट अपने "काव्यानुशासन" में गेय-रूपक हैं। आचार्य हेमचंद्र के शिष्य और नाट्यदर्पणकार रामचंद्र ने "रासकं" और "नाट्यरासकं" ऐसे दो भेद अलग किए हैं। जिसमें 16, 12 या 8 स्त्रियाँ नृत्त करती हैं, जिसमें पिंडीबंध आदि का विन्यास है, उसे रासक कहते हैं और जहाँ आसक्ति से बसंत ऋतु का आश्रम करके पृथ्वीपति के चरित्र के विषय में स्त्रियाँ नृत्त करती हैं उसे नाट्य रासक कहते हैं।[3] साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने 18 उपरूपकों में नाट्य रासक, रासक, और "हल्लीश"

---

1. "डोम्बी श्रीगदितं माणो भाणीप्रस्थानरासका:।
काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदा: स्युस्तेऽपि भाणवत्" ।।

2. तदिदं हल्लीसकमेव तालबन्धविशेषयुक्तं रास स्वैत्युच्यते ।
॥ सरस्वतीकंठाभरण ॥

3. पिण्डीबन्धादिविन्यासै: । तथा ... कामिनीभिर्युवा भर्तुश्चेष्टितं
यत्तु नृत्यते। रागाद् वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाटयरासक: ।।
॥नाटयदर्पण - रामचंद्र॥

की भी व्याख्या की है।

भावप्रकाशनकार शारदातनय नृत्त की दृष्टि से रास के तीन प्रकार बताते हैं। ॥1॥ लतारास ॥2॥ दंडरास ॥3॥ मंडलरास

मंडलरास में स्त्री-स्त्री, पुरूष-पुरूष, तथा स्त्री-पुरूष एक दूसरे के कंधे पर हाथ डालकर कोई गेय विषय को लेकर वर्तुलाकार में नृत्त करते हैं। लतारास में एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर एक दूसरे को पकड़कर वर्तुलाकार में नृत्त करते हैं। गुर्जर अहीरों में यह रास आज भी प्रचलित है। ठाकुर कौम की स्त्रियाँ एक दूसरी को निकटता से दबाती हुई वर्तुलाकार में घुमती, तालियाँ देती दौड़ती सी चलती हैं। यह लता रासक का एक भेद है ऐसा माना जाता है। "तालारास"[1] में एक दूसरे आमने-सामने तालियाँ स्त्रियाँ देती हैं। इसके साथ "लकुट रास" का भी उल्लेख हुआ है। लकुटरास ही दंडरास कहा जाता हैं।[2] इसी दंडरास को गुजरात में "दांडियारास" भी कहते हैं। दंडरास के समय कोई गीत गाया जाता है और स्वयं तथा आमने-सामने दंडी तालबद्ध रूप से टकराते हैं; इसका भी प्रचार था और आज भी है।

---

1. बइसइ सहूइ श्रमणसंघ सावय गुणवंता, जोयइ उच्छवु जिनहु भुवणि मनि हरष धरंता।
तीछे तालारास पड़इ, बहु भाट पढंता, अनइ लकुटरास जोईइ खेला नाचंता ॥।
॥ प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ. 52 ॥

2. लतारासकनाम स्यात्तत्त्रे धारासकं भवेत्।
दण्डरासकमेकं तु तथा मण्डलरासकम् ॥
( भावप्रकाशन पृ · २९६ ) ~~॥प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ. 52॥~~

गुजरात और सौराष्ट्र में इसका बहुत प्रचार है। आज भारत में नवरात्रि उत्सव के समय पर "गरबी" गायी जाती है। इसमें स्त्री-स्त्री, पुरूष -पुरूष अंबिका देवी के गीत गाते हैं। सौराष्ट्र में पुरूषों का गाने का अधिक प्रचार है। सौराष्ट्र के गाँवों में "गरबा उत्सव" ज़्यादा मनाते हैं। यह लतारास तथा दंडरास का मिश्र रूप है। बेंगाल में जहाँ दुर्गापूजा का अधिक महत्व है, वहाँ भी माता के गीत तालियों के तालों के साथ वर्तुलाकार में गाये जाते हैं। इसका आज भी पूर्णरूपसे प्रचार हैं।

रास का छंद

"रास" साहित्य के लिए भी छंद होता है। "रासा" छंद 21 मात्रा का है और उसके लक्षण "स्वयंभूछंद", हेमचन्द्र के "छंदोनुशासन" और "कविदर्पण" में मिलते हैं। रत्नशेखर के "छन्दःकोश" में दिया हुआ "आभाणक" छंद यही है।[1] दूसरा एक छंद है "कुन्द" जिसकी रचना को चर्चरी ॥चच्चरी॥ भी कहते हैं।[2] इसीमें मंजरी भाषा में रचना गाई जाती है।[3] इस प्रकार

---

1. "संदेशक-रासक" की संस्कृत टीका करनेवाले पंडित लक्ष्मीचंद ने "आभाणक" छंद के लक्षण देकर "एष रासकच्छन्दः" ऐसा कहा है। ॥पृ.12॥
2. डॉ. राघवन के अनुसार "नृत्तरासक" को ही "चर्चरी" कहते हैं।

   शृंगार प्रकाश - वी राघवन
3. "इयं च प्रथमं मंजरीभाषाया नृत्यद्भिर्गीयते।"

   ॥अपभ्रंशकाव्यत्रयी॥

रास के अनेक छंद है जिनमें बनी रचना गाई जाती है। "सन्देशक-रासक" काव्यगुणों से युक्त ऐसी सूचक रास रचना है और उसके अधिकांश छंद गेय कोटि के हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "रास" वह "नृत्त" प्रकार है। संस्कृत साहित्य के नाटकों में भी "रास" का संकेत है। "गीतगोविन्द" समूह नृत्त में या व्यक्तिनिष्ठ नृत्त में उपयुक्त होगा या नहीं, इसका प्रमाण भले ही न मिले किन्तु वह गेय अभिनयक्षम रचना है, इसमें दो मत नहीं।

## रास साहित्य

रास साहित्य प्रकार और नृत्त साहित्य प्रकार में किस प्रकार का संबंध है, यह जानना चाहिए। रास नृत्त प्रकार था और उसका साहित्य में अस्तित्व में आया, इसमें समय का पर्याप्त अन्तर है। नाट्यशास्त्र में दिये गये जातिरागों में उपयोग में आते ध्रुवपद, कालिदास के "विक्रमोर्वशीय" नाटक के चौथे अंक में आते अपभ्रंश गेय ध्रुवपद, "हरिवंश" में वर्णित "छालिकय" गेय और "मालविकाग्निमित्र" के "छलितक" गेय तथा "कुवलयमाला" की चर्चरी (रासनर्तन के लिए) को देखने से स्पष्ट होता है कि उस समय नृत्त प्रकार गेयता से समृद्ध थे, इसमें दो मत नहीं है। "गीतगोविन्द" से तो यह प्रमाण मिलता है कि भारत में शास्त्रीय रागों में ऐसी रचनाएँ प्रसिद्ध थीं।

ये अभिनयधम रचनाएँ हैं।[1] तात्पर्य यह कि राससाहित्य और अभिनय दोनों का अटूट संबंध है तथा रास के अभिनय प्रदर्शन के साथ साहित्य की रचना होती गई। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में गीतगोविन्द की रचना गाई जाती है - ताल और लाय के साथ। "रास" और "रासो" शब्द में अन्तर है। इसके संबंध में डॉ॰ नगेन्द्र का कहना है - जैन साहित्य के संदर्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि हिन्दी साहित्य के आदि काल में रचित जैन "रास काव्य" वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो काव्य से भिन्न हैं। दोनों की रचना-शैलियों का अलग अलग भूमियों पर विकास हुआ है। जैन रासकाव्यों में धार्मिक दृष्टि प्रधान होने से वर्णन की वह पद्धति प्रयुक्त न हुई, जो वीरगाथापरक रासो-ग्रंथों में मिलती है। इन काव्यों की विषय-वस्तु का मूल संबंध राजाओं के चरित तथा प्रसंशा है।[2] तात्पर्य यह कि दोनों में पूरा अन्तर है। इसके

---

1. तांजोर सरस्वती महाल ग्रंथमाला के छठे अंक में शीर्षक लेख में यह स्पष्ट है कि "गीतगोविन्द" के प्रत्येक शब्द को "भरतनाट्यम्" के ढंग पर किस प्रकार व्यक्त करना सो लेखक - के. वासुदेव शास्त्री ने बताया है। §1963§

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - संपादक - डॉ॰ नगेन्द्र - पृष्ठ - 53

संबंध में डॉ. जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल का कहना है कि कुछ लोग "रासो" की उत्पत्ति "राजसूय" से मानते हैं। किन्तु यह प्रमाणहीन है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "रासो" का मूल "रसायण" शब्द से खोजा है। कुछ लोग इस शब्द का संबंध "रहस्य" शब्द से बतलाते हैं। नरोत्तम स्वामी ने "रासो" शब्द की व्युत्पत्ति "रसिक" शब्द से मानी है जिसका अर्थ प्राचीन राजस्थानी भाषा के अनुसार "कथा-काव्य" होता है। इसी शब्द के रूप क्रमशः "रासडु" और "रासो" मिलते हैं। व्रजभाषा में "रासो" शब्द झगड़े के अर्थ में प्रचलित है। आचार्य चंद्रबली पांडेय "रासो" शब्द की उत्पत्ति शुद्ध संस्कृत रूप "रासक" से मानते हैं। यह "रासक" गेय होता है।[1]

"रासक" संबंध में जिन छंदों का उपयोग हुआ है उनमें "रासक" छंद ही ज्यादा प्रधान हैं। "संदेशक-रासक" में "रासक" छन्द का ही अधिक प्रयोग हुआ है। यह इक्कीस मात्रा का है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने कहा है - विरहांक ने अपने वृत्ति-जाति समुच्चय में दो प्रकार के "रासक" काव्यों का उल्लेख किया है। एक में विस्तारितक या द्विपदी और विदारीवृत्त होते थे और दूसरे अडिल्ल, दोहा, मत्ता, रड्डु और रोला छंद हुआ करते थे।

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -
   डॉ. जयकिशन प्रसाद - पृष्ठ 61

"संदेशक-रासक" दूसरी श्रेणी की रचना है। तात्पर्य यह कि "रास" और "रासो" में पर्याप्त अन्तर है। "रासो" वीरपुरूषों के चरित्रों की रचना है, जब कि "रास" या "रासक" खेल या मनोरंजन की वस्तु है, जो गेय है।

निष्कर्ष

ऊपर की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि "रास" शब्द के मूल में ब्रम्ह की भावना है, विषय की नहीं; आध्यात्मिक भावना है, शारीरिक या लौकिक नहीं। "रास" शब्द का मूल "रसो वै सः श्रुति के अनुसार है। आनंद-मनोरंजन उसका प्रधान भाव है जिसमें आध्यात्मिक भावना निहीत है। "रास" आज समस्त भारत में प्रचलित है। पुरूष-पुरूष; स्त्री-स्त्री; या एक पुरूष अनेक स्त्रियाँ गेय कृति के साथ दंडरास का आयोजन करते हैं। इस समय विशिष्ट प्रकार की वेष-भूषा होती है, जैसे कि अहिरों की वेष-भूषा, कृष्ण-गोपी वेष-भूषा, वर्तमान समय की वेष-भूषा (चूडीदार पायजामा तथा सफेद या रंगीन कुर्ता) आदि। इस समय विविध रंगी प्रकाश का भी सुंदर आयोजन होता है और विविध प्रकार के वाद्ययंत्र की ध्वनि के साथ रास सक्रिय होता है। इस समय ऐसा दृश्य होता है कि हम उसमें - रास, दंड के टकराने की ताल-ध्वनि, संगीत, व्यक्तिओं का तालबद्ध घुमना (पैर उठाना, घुमरियाँ लेना ..आदि), गेय कृति के शब्दों की भावना आदि में लीन हो जाते हैं। सौराष्ट में काठियों का रास एक विशेष प्रकार का आयोजन होता है। सौराष्ट्र के लोकरासों के आधार पर गुजराती लोक साहित्य के

प्रसिद्ध कवि श्री झवेरचंद मेघाणी ने अनेक सुंदर रास कृतियों का निर्माण किया है। सौराष्ट्र के साहित्य की रसमय धारा को समस्त गुजरात एवं भारत में प्रसारित करने में कुशल कलाकार थे। गुजरात में आज "गरबा और रास" का आयोजन होता है जो अश्विन सुदी प्रतिपदा से विजयादशमी तक चलता है। गरबा स्त्री वर्ग की विशेषता है जो "तालारास" से मिलता झुलता है। सौराष्ट्र के कई नगरों में पुरूष वर्ग भी गरबा गाते हैं। आजकल गरबा और रास की स्पर्धाओं का आयोजन भी किया जाता है जो समय की एक विशेषता है।

वैष्णव मंदिरों में जिनको हवेलियाँ कहते हैं वहाँ "रास" का आयोजन होता है। कृष्ण और गोपी के रूप में स्त्री-पुरूष भाग लेते हैं और महारास की ओर संकेत करते हैं। कभी कभी केवल कन्याएँ रास खेलती हैं और वर्तुलाकार के बीच एक लड़के को बालकृष्ण की वेषभूषा में बंसी बजाते हुए - ऐसी मुद्रा में खड़ा कर देती है। इस प्रकार भी मंदिरों में महारास की भावना को सजीव की जाती है। प्रेक्षक लोग महारास के दर्शन के रूप में इसका आनंद उठाते हैं।

कुछ मंडलियाँ होती हैं जो निमंत्रण पर रास-गरबा का कार्यक्रम करती हैं। इनका कार्यक्रम व्यवस्थित, कलात्मक, संगीतात्मक और सुप्रेक्षणीय होता है। ऐसे "रास-गरबा" कार्यक्रम में हमारी भारतीय संस्कृति और भक्ति भावना का दर्शन होता है।

भारत की सबसे बड़ी प्रतिनिधित्व करनेवाली "ईस्कॉन" संस्था के संस्थापक आचार्य श्री ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विदेशों में "हरेकृष्ण - हरेराम" का जोर-शोर से प्रचार हुआ है और हो रहा है। ये लोग रास्ते और मोहल्लों में 8-10 स्त्री-पुरुष श्रीकृष्ण के नाम के भजन-कीर्तन वर्तुलाकार में या उछलते-कूदते गाते हैं। ये लोग भी अति कलात्मक ढँग से संगीतमय एवं नृत्यमय रास का आयोजन करते हैं - विदेशों में - जो "महारास" की भावना को अभिव्यंजित करते हैं। ये लोग युवा शक्ति का पूरा उपयोग करते हैं और श्रीकृष्ण-गोपी बन "महारास" की भावना को वास्तविक एवं यथार्थ बनाने का प्रयत्न करते हैं। एक बात अवश्य परिवर्तन में आई है कि भारतीय संगीत में पश्चिमी संगीत ने अपने आपको मिला दिया है। तात्पर्य कि मूल भारतीय शास्त्रीय संगीत उसमें नहीं रहने पाया। पश्चिमी संगीत का उसमें प्राधान्य हो गया है और नृत्त करते समय ये लोग संगीत के साथ नृत्त करते है जो पश्चिम की असरवाला है जिसे सामान्य रूप से रोक एन्ड रोल भी कहते हैं।

तात्पर्य यह कि "रास" का अति प्राचीन काल से जो प्रारंभ हुआ, उसकी प्रगति एवं विकास उम्र की चर्चा में स्पष्ट है।

Chapter - 2



अध्याय द्वितीय

§अ§ श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का महत्त्व

श्रीमद्भागवत में "रासपंचाध्यायी" प्राण के समान है। उसका कई प्रकार से महत्त्व है। श्रीकृष्ण की भक्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, उसका मार्ग तो रासपंचाध्यायी। जब तक मनुष्य में त्याग की भावना उत्पन्न नहीं होती, ईश्वर का नैकटत्व प्राप्त नहीं होता। जब तक मनुष्य में लौकिक भावनाएँ संसारमय होती हैं, तब तक उसे भगवद्विषयक भक्ति का ज्ञान नहीं होता, परंतु जब उसमें वैराग्य की भावना प्रवेश करती है, तब उसमें आध्यात्मिक मनोवृत्ति जाग्रत होती है। इसे दार्शनिक भावना कहते हैं। दार्शनिक भावना के अनेक रूप है जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग आदि। "रास" शब्द भी दार्शनिक भावना को व्यक्त करता है।

"रास" शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से होती है। एक "रास" शब्द "रासृ" धातु में "घञ्" प्रत्यय मिलाने से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है शब्द। शब्द में स्फोट का भाव है तथा स्फोट में कंपन का भाव अभेद रूप से रहता है जिसमें से ब्रम्ह का भाव भी स्पष्ट होता है। "रसेन कृत: रास:" -

जिसका अर्थ है रस के द्वारा किया गया कार्य। "रसो वै सः" - श्रुति के अनुसार "रस" का अर्थ है ब्रम्ह। अतः रास का अर्थ हुआ ब्रम्ह का कार्य।[1] भागवत प्रतिपादित रास का स्वरूप ब्रम्ह के लीलामय कार्य में उसके मूल तत्त्व को प्राप्त करने के लिए भक्तियोग के रूप में मानसिक प्रवृत्ति का प्रतिपादन प्रस्तुत करता है। रास का प्रतिपादन जीव में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से ब्रम्ह की ओर संकेत करता है जिससे उसके तीन प्रकार के - दैविक, दैहिक एवं भौतिक - तापों का नाश होता है। भागवत में ब्रम्ह के स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्वरूपों को दस अवस्थाओं में प्रस्तुत किया है - सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय।[2] इनमें "आश्रय" अवस्था ब्रम्ह का सूक्ष्म स्वरूप है जिसको प्राप्त करने के लिए अन्य अवस्थाओं को आत्मसात करना नितान्त आवश्यक है क्योंकि भागवत में ही निर्देश किया

---

1. स्वं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ।
   सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ।।
   श्रीमद्भागवत - 3.10.29

2. अत्रसर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
   मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।
   श्रीमद्भागवत 2.10.1

गया है कि सर्ग से आश्रय तक पहुँचने के लिए "नवधा भक्ति" श्रेष्ठ मार्ग है।[1] इसमें से श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वंदन तथा दास्य - इन सात भावनाओं द्वारा सर्ग से लेकर ईशानुकथा तक ब्रम्ह की विभूतियों को हृदयंगम किया जाता है और इन्हीं के कारण अन्त:करण में आत्मा के प्रति संख्यभाव का उदय होता है जो चेतना में निरोध एवं मुक्ति के भाव को जाग्रत करता है।[2] मुक्ति की स्थिति में पहुँचने के पश्चात भक्तियोग के अंतिम सोपान आत्मनिवेदन द्वारा जीव संसार में निराश्रय होकर आश्रय रूप परमात्मा में तल्लीन हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का रास भक्तियोग के इसी दार्शनिक रहस्य का प्रतिपादन करता है। भगवान जब मुरली बजाकर गोपियों को आकर्षित करते हैं, तो वह भक्तियोग का विकसित रूप है, परंतु

---

1. दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
   वर्णयन्ति महात्मान: श्रुतेनार्थेन चांजसा ।।
   
   श्रीमद्भागवत 2.10.2

2. श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम् ।
   अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।
   
   श्रीमद्भागवत 7.5.23

"जब गोपियों को मान होता है तो उसे दूर करने के लिए श्रीकृष्ण अदृश्य हो जाते हैं।[1] उनके अदृश्य होते ही गोपियाँ श्रीकृष्ण का रटन करती हैं। इससे उनकी आन्तरिक दृष्टि खुल जाती है और वे आत्मसमर्पण के साथ अपना सर्वस्व भूला देती हैं। तब भगवान श्रीकृष्ण उनके पास उपस्थित होते हैं और उनको सांत्वना देते हुए उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं।[2] भक्तियोग के अंतिम सोपान आत्मनिवेदन का उद्देश्य है आश्रय (ईश्वर) की प्राप्ति। यहाँ लौकिक आसक्ति समाप्त हो जाती है। गोपियों के आत्मनिवेदन के रूप में आत्मसमर्पण का परिणाम "महारास" है। यहाँ भगवान का सूक्ष्म स्वरूप से अनुभव होता है। गोपियाँ "नाथ" भावसे भक्ति करती हैं। श्रीकृष्ण सभी के - गोप गोपी के हृदय में हैं - अतः स्वयं का स्वयं से शरीर स्पर्श दोष नहीं है।[3] तात्पर्य यह कि रासक्रीड़ा विषयात्मक नहीं, भावात्मक है;

---

1. तासांतत् सौभगमदं वीक्ष्यमानं च केशवः ।
   प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।।
   श्रीमद्भागवत 10.29.48
2. तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
   तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ।।
   श्रीमद्भागवत 10.30.44
3. गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
   योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ।।
   श्रीमद्भागवत 10.33.36

न लौकिक है, न शारीरिक; परंतु संपूर्ण रूप से आध्यात्मिक है - अलौकिक है। इसी कारण से रासक्रीड़ा में तल्लीन रहनेवाली गोपियों को अपने पास ही उपस्थित पाया और उनके मनमें श्रीकृष्ण के प्रति किसी प्रकार का द्वेष भाव नहीं हो सका।[1] "रास" के संबंध में "श्रीमोक्षपत्रिका - श्रीमद्भागवत" में कहा गया है कि यह भजनानंद का विषय है। वर्तुलाकार में समान वय की स्त्रियाँ और पुरूष एक साथ पैर उठाकर, हाथों से तालियाँ बजाकर घुमे उसे रास कहते हैं। उस समय वाद्यंत्र भी बजाये जाते हैं। गीत और घुमने की धूनमें सभी अपने आपको खो देते हैं और अपने अलौकिक प्रेम का प्रागट्य होता है। वेदांत में ज्ञान के बाद प्रेम की भूमिका का प्रारंभ होता है। ऐसे दृश्य को देखकर प्रेक्षक भी उसमें लीन हो जाता है। इसमें जो एकाग्रता होती है, वहीं एक प्रकार का तप है। ऐसे रास - भजनानंद द्वारा चित्त की एकाग्रता साधी जाती है।

"रासपंचाध्यायी" के संबंध में दो मत हैं। कुछ लोग "रासपंचाध्यायी" को पवित्र एवं आवश्यक मानते हैं। कुछ लोग लौकिक दृष्टि से उसकी नींदा करते हैं। "रास में गोपियाँ परदारा, श्रीकृष्ण पर पुरूष और उनकी काम चेस्टाएँ" इतना ही सोचकर उससे विमुख रहना भूल है। रास के दो उद्देश्य है :

---

1. नासूयन् खलुकृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान स्वान् दारान् व्रजौकसः ।।

श्रीमद्भागवत 10.33.38

एक तो वह कि गोप गोपीकाओं को 28वें अध्याय में ब्रम्हानंद का लाभ देने के पश्चात् भजनानंद ब्रम्हानंद से श्रेष्ठ है, इसको सिद्ध करने के लिए और भजनानंद के भोगी मनुष्यों को सदा भजनानंद का लाभ सदा मिलता रहे, उस उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने रास रूप भजनानंद का उत्सव किया।

दूसरा उद्देश्य यह कि कामदेव ने ब्रम्हादि देवों को परेशान किया था। पाराशर और विश्वामित्र जैसे मुनियों को भी पागल बना दें। इसी कारण से रासद्वारा कामदेव का अहं नष्ट करने के लिए श्रीकृष्ण ने सोचा कि प्रेमपूर्ण अनेक गोपियों का विषय बनूँ; उनके बीच खेलूँ, उनको खिलाउँ, फिर भी बाल ब्रम्हचारी हूँ, निर्लेप हूँ, ऐसा इन लोग में सिद्ध कर दूँ। रास द्वारा गोपीजनों का उद्धार का विषय अति गौण है। गुजरात का प्रसिद्ध भक्त कवि नरसिंह महेता भी इसी बात का समर्थन करते हैं। रासलीला शुद्ध हृदय का विषय है। जिसको हृदय शुद्ध हो उसीको उसका सच्चा अनुभव होवे। उसकी निर्मलता का ज्ञान होवे। रास पर सोचनेवाले तो

---

राजप्रभात

1. कोटि कंदर्पनो दर्प हरवा प्रभु, भुतल भोगीनुं रूप लीधुं,
कामिनीकेल कीधी कलिकालमां, अबला जनने अभयदान दीधुं ।
चार जुग मांही मुक्ति नहीं नारीने, जगत् माहे एवुं शास्त्र बोले;
अधम उद्धारवा प्रगटिया श्रीहरि, एवुं जाणी स्त्रीयो गाय कोडे
ए रस गायो शुकदेवजी योगीए, परीक्षित रायनी पास थोडे,
सार मां सार शृंगाररस कीधलो, एवं जाणी जे कोइं गान करशे,
ते तणा चरणनी रेणुमां नरसैया, रंग सरखा कंइं कोटि तरशे।

भक्त नरसिंह महेता

श्रीकृष्ण के नामपर श्रीकृष्णरूप बन गये। यही आत्मसमर्पण की भावना है और अनन्य भक्ति है। लौकिक भावना वाली स्त्री के साथ कामचेष्टा की भावना से वितरागी नहीं खेल सकता। श्रीशुकदेवजी के अनुसार श्रीकृष्ण ने व्रज की स्त्रियों के साथ की हुई इस लीला का श्रवण करें, उसका कल्याण होवें। चीरहरणलीला प्रसंग में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रखा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोगों की ओर ले जाने में समर्थ नहीं होती; ठीक वैसे ही, जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर फिर अंकुर के रूप में उगने के योग्य नहीं रह जाते।[1] इसी प्रकार गोपियों का काम पुनर्जन्म दाता नहीं है। तात्पर्य यह कि रासलीला में श्रीकृष्ण ही है।

भक्तो और आचार्यों का कहना है कि रासके पाँच अध्याय श्रीमद्भागवत के प्राणरूप हैं - प्रधान है। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि श्रीमद्भागवत का यह प्रक्षिप्त अंश है। प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय के तीसरे श्लोक में ही कहा गया है कि :-

पिबत भागवतं रसमालयं,
मुहुरहो रसिकाः भुवि भावुकाः ।

---

1. न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ।।
श्रीमद्भागवत - 10.22.26

अर्थात् भागवत रस का स्थान है और इस संसार में भाविक रसिक लोग इस का पान करते हैं। श्रीकृष्ण ने गोपियों को रास के प्रसंग में अधरामृत का पान कराया था वह बात प्रथम स्कंध के दसवें अध्याय के 28वें श्लोक में आयी है :-

" अधरामृत मुहु व्रजस्त्रियः "

इन शब्दों से इस बात का स्पष्टीकरण किया है। दूसरे स्कंध के सातवें अध्याय के 33वें श्लोक में रास की बात है।[1] तथा उद्धवजी कहते हैं तीसरे स्कंध में कि :- संध्या के समय जब सारे वृन्दावन में शरद् के चन्द्रमा की चाँदनी छिटक जाती, तब श्रीकृष्ण उसको सम्मान करते हुए मधुर गान करते और गोपियों के मंडल की शोभा बढ़ाते हुए उनके साथ रासविहार करते हैं।[2] श्रीकृष्ण ने गोपियों को

---

1. क्रीडन वने निशि निशाकररश्मिगौर्या,
रासोन्मुख कलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररूजां व्रजभृद्वधूनां,
हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ।।

श्रीमद्भागवत् 2.7.33

2. शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ।
गायन कलपदं रेमे स्त्रीणां मंडलमंडनः ।।

श्रीमद्भागवत 3.2.34

बचन दिया था, तुम शरद ऋतुओं की रात्रिओं में मेरे साथ रमण करोगी।[1]

इसी बचन का पालन भगवान ने 29वें अध्याय के प्रारंभ से किया .....

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे, योगमायामुपाश्रितः ।।

॥ श्रीमद्भागवत - 10.29.1 ॥

... और भगवान ने रात्रिओं को देखकर रास का सूचन किया। तथा गोपिओं ने उद्धवजी से पूछा था कि रासलीला वाली रात्रियाँ प्रभु कभी याद करते हैं ?

ताःकिं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृन्दावने
कुमुदकुन्दशशांकरम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित ।।

॥श्रीमद्भागवत 10.47.43॥

---

1. यातबाला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ।

श्रीमद्भागवत 10.22.27

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत में "रासपंचाध्यायी" प्रक्षिप्त अंश नहीं है, परंतु इसकी रचना श्रीमद्भागवत के साथ ही हुई है। अन्य पुराणों ने भी "रासपंचाध्यायी" के संबंध में संकेत किया है। "युवतीगोपिकन्याश्च" आदि शब्दों से "हरिवंशपुराण" में संकेत है और "रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः" आदि वचनों से "विष्णुपुराण" में रासलीला का संकेत है।

श्रीधरस्वामी रासपंचाध्यायी प्रारंभ करने से पूर्व कहते हैं कि "रासपंचाध्यायी" श्रृंगार के उपदेश द्वारा जीवों को निवृत्तिपरायण करती है।[1] श्रीजीवगोस्वामी अपनी बृहत्क्रम संदर्भ नामक टीका में "अथ ब्रम्हेंद्राग्निवरूणादिनां दर्पं शमयित्वा" आदि शब्दों से सूचन करते हैं कि ब्रम्हा, इन्द्र, वरूण आदि देवों के गर्व को शांत करने के बाद, कामदेव के गर्व को शांत करने के लिए - अर्थात् प्रेमसे छलकती अनेक गोपियों के बीच मैं खेलूँ - खिलाऊँ, फिर भी बाल ब्रम्हचारी हूँ, अस्खलित वीर्यवान हूँ ऐसा विदित करने के लिए - श्रीकृष्ण ने रास नामक उत्सव का आयोजन किया।

---

1. शृंगारकथोपदेशन विशेषतां निवृत्तिपरेयं पंचाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामि ।

श्री धनपति अपनी भागवत गूढार्थ दीपिका नामक टीका में श्री जीवगोस्वामी के मत का समर्थन करते हैं।

श्री विजयध्वजतीर्थ अपनी "पद रत्नावली" नामक टीका में कहते हैं कि निर्दोष भक्ति से उत्पन्न कराया हुआ ब्रम्हज्ञान ही मुक्ति का साधन है, ऐसा ही शास्त्र का निर्णय है, उसे यह अध्याय सुदृढ़ करता है।[1] "भक्तिमंजुषा" भी रास की निर्मलता का सूचन करती है। श्रीमद्वल्लभाचार्य भी अपनी "सुबोधिनी" टीका में कहते हैं कि ब्रम्हानंद की अपेक्षा भजनानंद का महत्व अधिक है और उस के लिए गोपिकाएँ ही योग्य ही हैं। इसके उपरांत श्रीमदवीरराघवाचार्य ने अपनी "भागवत चंद्र चंद्रिका" नामक टीका में और श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ति ने अपनी "सारार्थदर्शनी" तथा "विशुद्धरस दीपिका" नामक टीकामें तथा श्री शुकदेवजी ने अपनी "सिद्धांत प्रदीप" नामक टीका में तथा श्रीराम नारायण ने अपनी "भाव भावविभाविका" नामक टीका में रासपंचाध्यायी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

---

1. निर्दोष भक्तिजनित ब्रम्हज्ञानमेव मुक्तिसाधनमिति या शास्त्रतात्पर्यार्थी वधारणातदर्थवादं वदत्यस्मिन्नध्याये ।

गुजरात के दयारामभाई कविने रासपंचाध्यायी के संबंध में काव्य भी बनाया है। तात्पर्य यह कि श्रीमद्भागवत में "रासपंचाध्यायी" प्राण के समान है। अर्थात् श्रीकृष्ण की बाललीला प्रसंग में उसका जो वर्णन महर्षि वेदे व्यासजी ने किया है, यह अद्भूत है। श्रीकृष्ण की भक्ति - माधुर्य प्रेम लक्षणा भक्ति कैसे प्राप्त करना, इसकी ओर श्री व्यासने संकेत किया है। गोपियों का अभिसार, भगवान के साथ रमण करना, अहं-मान की उत्पत्ति, भगवान का अदृश्य हो जाना, तथा गोपियों का भजनानंद द्वारा श्रीकृष्णमय बन जाना और गोपियों के आत्मसमर्पण के परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण का फिर से दर्शन देना - ये सब भक्ति योग के लक्षण हैं। जब तक आत्मसमर्पण नहीं होता तब तक आराध्य की प्राप्ति नहीं होती। "रासपंचाध्यायी" वास्तव में भक्ति योग का दूसरा स्वरूप है। अर्थात् श्रीमद्भागवत में अन्य कथाएँ इतिहास का स्वरूप हैं और "श्रीकृष्ण की बाललीला तथा पंचाध्यायी" भक्ति का मूर्त रूप है। अतः हम "रासपंचाध्यायी" याने भागवत ऐसा कहें तो कोई क्षति नहीं है।

श्री नथुराम शर्माजी ने "रासपंचाध्यायी" की अपनी गुजराती टीका में लिखा है -

मनोवृत्ति गोपी गणी, सदानंद हरि नाथ,
अंतर रास सदा रमो, त्यजी स्थूल नो साथ ।

अर्थात् हे प्रेम लक्षणा भक्ति की इच्छा करनेवाले मनुष्य! अपने अन्तर की वृत्तिओं को गोपीरूप समझकर और भक्तों के अज्ञान का तथा उसके कार्य शोक मोहादि का हरण करनेवाली सदानंदरूप आत्मा को - उन वृत्तिओं की प्रकाशक होने से उनके स्वामी श्रीकृष्ण को जानो। ऐसा जानकर अपने स्थूल शरीर के अभिमान तथा बाह्यजगत की ममता का त्यागकर अपने हृदय-प्रदेश में स्थित "रसोवैसः" - "वह परमात्मा ही आनंदरूप है" - इस ब्रम्ह के आनंद अंश को ग्रहण कर के अन्य प्राणी आनंदानुभव करते हैं - वह श्रुति में रास रूप - रस के समूहरूप अथवा परमानंदरूप कहे हुए परमात्मा के स्वरूप के आकार को बार-बार होने वाले रासरूप सर्वदा रमो और कृतार्थ होओं।

तात्पर्य यह कि "रासपंचाध्यायी" प्रेमलक्षणा भक्ति का उत्तम प्रतीक है और पुष्टि संप्रदाय का प्राण रूप है। भागवत का जो महत्त्व है वह "पंचाध्यायी" में ही है।

॥आ॥ श्रीमद्भागवत में गोपियों के प्रेम का स्वरूप

पुष्टि संप्रदाय में श्रीकृष्ण, राधा, गोपी और मुरली के संबंध में मान्यताएँ स्पष्ट हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी इसे अपनी टीका "सुबोधिनी" में भी स्पष्ट किया है। श्री हरिरायजी ने "श्रीकृष्ण शब्दार्थ निरूपण" ग्रन्थ में "कृष्ण" शब्द का तात्पर्य इस प्रकार बताया है :-

"कृष्" धातु सत्तावाचक है और "ण" आनंदवाचक। ये दोनों मिलकर "कृष्ण" शब्द बनता है जो परब्रम्ह वाचक है। श्री हरिरायजी आगे कहते हैं कि गोपीजनों के हृदय में विराजने वाली रस सत्ता का नाम ही "कृष्ण" है।[1] यह सदानन्दस्वरूप है। "कृष्ण" श्रुति स्मृति प्रतिपादित परमानन्दका ही नाम है। यही परमानन्द तत्त्व समस्त प्राणीमात्र के हृदय में स्थित है। उनका ॥श्री हरिरायजी॥ कहना है कि यह जगत जो भगवान का प्रपंच कार्यक्रम है, नित्य है, भगवद्रूप है, वही सर्व वेदान्त वेद्य है, उसके अन्त:स्थित, कूटस्थ, सच्चिदानन्द और अव्यक्त होते हुए भी वह व्यक्त आश्रयरूप भगवान है। यह जगत उसका चरणरूप लोक अथवा उसका निवासस्थान अथवा आधाररूप ब्रम्ह है। उसमें स्थिति करनेवाला, लोक और वेद से परे पुरूषोत्तम रसात्मा है इसीलिए उसे श्रृंगार रस रूप सभी ने माना है।

---

1. अत: कृष्ण सदानन्द: स्वामिनी हृदयलालित: ।

वह रसात्मा सिद्ध पुरूषोत्तम रूपवान होकर भी अनन्त शक्ति संपन्न, अप्राकृत, निजानन्द रूप लोक - वेदातीत अपने व्यूहों से मुक्त होकर वसुदेव के घर में उत्पन्न हुआ। वह रसेश श्री-कृष्ण लौकिक इन्द्रियादिकों से गम्य नहीं। उसे प्रत्यक्ष करनेवाली इन्द्रियाँ अलौकिक होनी चाहिए। अत: ब्रज सीमान्तनियों अथवा गोपीजनों ने भगवान के साथ जो रसात्मक संयोग किया वह भावात्मक संयोग हैं। श्रीकृष्ण अन्त:स्थित रस स्वरूप है। इस प्रकार संप्रदाय में श्रीकृष्ण साक्षात् पुरूषोत्तम हैं। पुरूषोत्तम के तीन रूप हैं।

1. आधिभौतिक - नारायण लक्ष्मीपति: क्षरस्वरूप।
2. आध्यात्मिक - अक्षर ब्रम्ह।
3. आधिदैविक - पुरूषोत्तम।

अत: सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार श्रीकृष्ण संप्रदायानुकूल रसात्मा, रसेश, भावनिधि परम कारुणिक लोकवेदातीत श्रृंगारस्वरूप, गोपीजन वल्लभ, भक्तवल्लभ भक्तप्रिय आनन्दरूप भावात्मा कृष्ण हैं जो पूर्ण पुरूषोत्तम परब्रम्ह हैं और निकुंजलीला के गायक हैं।[1]

---

1. कविवर परमानन्ददास और वल्लभ संप्रदाय -
   - डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल -
   पृ. 202

श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक भावना का यह संपूर्ण निर्वाह भागवत में चित्रित श्रीकृष्ण के अनुसार ही है।

भागवत के कृष्ण पूर्णावतार हैं।[1]

अष्टछापी सखा सभी भागवतानुसारीलीला गायक हैं। वे भगवान के मनुष्यावतार की लीलाओं का वर्णन करते हुए पूर्ण पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण की ओर संकेत करते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम अटूट और अखंड है जिसका वर्णन भागवतकार ने मुक्तकंठ से किया है।

अष्टसखाओं ने श्री राधा को भी श्रीकृष्ण के साथ महत्व दिया है। श्रीमद्भागवत में श्रीराधा का कोई संकेत नहीं है। सूर ने राधा विषयक कल्पना अपनी विशेषता के रूप में प्रदर्शित की है। कुछ विद्वानों ने राधा का संबंध वेदों से जोड़ा है। डॉ. हरबंसलाल शर्मा का इस विषय में कहना है - "यद्यपि पौराणिक पंडित राधा का संबंध वेदों से लगाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधिका को वेदों तक घसीटना असंगतही प्रतीत होता है। गोपालकृष्ण की कथाओं से परिपूर्ण भागवत हरिवंश और विष्णुपुराण ही प्राचीन ग्रन्थों में राधा का अनेक प्रकार से संदेशों को जन्म देता है। गोपालतापिनी, नारद पंचरात्र तथा कपिल पंचरात्र आदि ग्रन्थ इस विषय में प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते। क्योंकि वे बहुत बाद की

---

1. एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
श्रीमद्भागवत - 1.3.28

रचनाएँ हैं। राधाकृष्ण का उल्लेख हाल की गाथा सप्तशती में है। पंचतंत्र में राधा को उल्लेख हैं।[1]

डॉ. हरबंसलाल शर्मा ने सूरसे पूर्व राधा का स्त्रोत ब्रम्हवैवर्तपुराण और जयदेव का गीतगोविन्द दो ही माने हैं। अतः सूर पर इसके साथ विद्यापति और चंडीदास का भी प्रभाव है।

श्रीमद्भागवत में श्रीराधा की चर्चा नहीं है, परंतु अप्रत्यक्ष रूपसे राधा भाव की साधना की चर्चा की है। संप्रदाय में श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त पद्मपुराण, विष्णुपुराण, ब्रम्हवैवर्तादि की भी मान्यता है, इसी कारण से महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम में स्पष्ट लिखा है –

पंच सप्तति विस्तीर्ण पुराणान्तर भाषितम्।[2]

इसीलिए श्री वल्लभाचार्यजी ने राधा की चर्चा की है और आचार्य की चर्चा के आधार पर अष्टसखाओं ने राधा भाव की साधना की है।

---

1. सूर और उनका साहित्य
   – पृ. 265
2. पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम –
   श्लोक – 49

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रेम की चर्चा है, जो भक्ति की चरमसीमा है। स्वयं भगवानने कहा है :-

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे व्यक्तदैहिका: ।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गता: ।।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ।।

श्रीमद्भागवत - 10.46.4

जो लोग मेरे लिए लौकिक मर्यादा छोड देते हैं उनका भरण-पोषण मैं करता हूँ ऐसा श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं। यहाँ गोपियों की प्रेम भावना है। ये गोपियाँ भगवान में अपना तन-मन सब कुछ लगा चूकी थीं। भगवान में इनकी अवर्णनीय आसक्ति देखकर बड़े-बड़े ज्ञानी भक्त भी इनकी चरण-रज के लिए उत्सुक रहते थे।[1] कारण इनकी सात्विक भावना ही है। इसीसे कृष्ण-भक्ति संप्रदायों में गोपी-भक्ति आदर्श माना है। भावानुसार इन्हें स्वकीया, परकीया, सहचरी, स्वामिनी आदि रूपों में भक्तों ने स्मरण किया है। तात्पर्य यह कि वल्लभसंप्रदाय में सभी भावों का समन्वय है।

---

1. आसामहो चरणरेणुजुषामहंस्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।। 61
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णश:।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।। 63

श्रीमद्भागवत 10.47.61-63

आचार्य वल्लभ ने अपने संन्यास निर्णय में इन गोपियों को भक्तिमार्ग का गुरू ठहराया है।[1] उन्होंने गोपियों की विरहजन्य पीड़ा के लिए कामना की है।

गोकुले गोपिकानाम् च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत्सुखं समभूतन्मेभगवान् किं विधास्यति ।।

श्रीमद्भागवत गीता -

आचार्य ने गोपियों में प्रेम की चरमसीमा मानी है :-

"पराकाष्ठा प्रेम्णां पशुपतिरूणीनां धितिभुजाम्"

ये गोपियाँ सर्वस्व त्यागकर रासमंडल में संम्मिलित होने वाली श्रुतिरूपा गोपिकाएँ भक्तिमार्गीय सन्यास का उत्तम उदाहरण हैं। इसीकारण से नारदीय भक्ति सूत्र में अनुराग को आदर्श माना है।

---

1. कौण्डिन्यो गोपिका: प्रोकता गुख: साधनं च तत् ।
भावो भावनया सिद्ध: साधनं नान्यदिष्यते ।।

सन्यास निर्णय - 9

यथा ब्रजगोपिकानाम् - ना.भ.सू.21. इसका कारण यह कि ये गोपियाँ अपना समस्त कर्मों को भगवान को अर्पण करती हैं और भगवत् विस्मृति में व्याकुल हो जाती हैं।[1]

गोपियाँ रस की समर्थक रूपा शक्तियाँ हैं। वस्तुतः प्रेमरस में मग्न हुए भक्तों का नाम ही "गोपी" है। गोपा अर्थात् स्त्री स्वभाव वाला भक्त। हृदय प्राधान्य तत्व का नाम "स्त्री" है। अतः पूर्ण स्त्री भाव ही गोपीभाव है। गीता में इसी को "परमभाव" का नाम दिया है।[2]

परमभावमजानन्तो ।। गीता

इसका उदाहरण है - "योषाजारमिव प्रियम्"

तात्पर्य यह कि सर्वोत्तम आत्मसमर्पण भाव अर्थात् गोपीभाव। इसमें वेद-शास्त्र आदि की कोई सत्ता नहीं रहती। न इसमें वियोग है, न संयोग। यह प्रेम की उत्कृष्ट कोटि है।

आचार्यजी ने गोपिकाओं के तीन प्रकार माने हैं।

---

1. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।

ना.भ.सू.13

2. परमानन्ददास और वल्लभ संप्रदाय -

डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल

1. गोपांगनाएँ

विवाहिताएँ होने पर भी वेदमर्यादा की बिना चिन्ता किए श्रीकृष्ण को अपना पति मानती है। इन्हें "अन्यपूर्वा" भी कहते हैं। श्रीभगवत्पीठिका में महाप्रभुजी ने इनको लक्ष्य करके कहा हैं :-

"गोपांगनासुपुष्टि:"

2. गोपी

जो कुमारिकाएँ हैं और श्रीकृष्ण को पतिभाव से स्वीकार करना चाहती है।

3. ब्रजांगना

यह "सामान्या" भी कही जाती हैं। ये कृष्ण में पुत्र भाव रखती हैं।

व्रजांगनासु प्रवाह:। श्रीभगवत्पीठिका।

1. कृष्ण जन्म पर बधाई लेकर आनेवाली गोपियाँ तथा माता यशोदा - सामान्या अथवा ब्रजगोपिकाएँ हैं।

2. हेमन्त में कात्यायनी दुर्गा की पूजा करने वाली गोपियाँ अनन्यपूर्वा अथवा ब्रजकुमारिकाएँ हैं।

3. लोक मर्यादा का उल्लंघन कर भगवान में सदा रत रहनेवाली गोपियाँ अन्यपूर्वा हैं। ये ही पुष्टि पुष्टि गोपियाँ हैं।

तात्पर्य यह कि श्रीमद्भागवत में हम तीनों प्रकार की गोपियों का दर्शन करते हैं जो भगवान श्रीकृष्ण में अपना प्रेम लगाये हुए हैं और प्रेम द्वारा अपनी अनन्य भक्ति का प्रदर्शन करती हैं। श्रृंगार और वात्सल्य दोनों भावों का दर्शन होता है। इनका प्रेम सहज और जन्म जन्मांतर का है। इसीकारण से भगवान इनको अपनी बनौ लेते हैं और इसी प्रेम के फल के रूप में अपने प्रेम को दान देती हैं।

§इ§ मुरली का महत्त्व

वेद उपनिषद पुराणों में शब्दब्रम्ह की महिमा का वर्णन है। पौर्वात्यदर्शन में शब्द को साक्षात् परब्रम्ह माना है। "शब्द" के द्वाराही "अर्थ" की समझ आती है। "अर्थ" शब्द के पीछे-पीछे दौड़नेवाला है। इसीलिए नंददास ने "मुरली" को "नाद ब्रम्ह की जननि" माना है।[1] श्रीमद्भागवत में "वेणुगीत"

---

1. तबलीनी कर-कमल जोग-माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरन रस जुरली ।।
जाकी धुनि ते अगम, निगम, प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रम्ह की जननी मोहनी सब-सुख-सागर ।। रा.पं.अ. 1.55.56

में मुरली की ध्वनि का सुदर वर्णन है। सुंदर वेषधारी श्रीकृष्ण श्रेष्ठ नटसा अभिनय करते हुए बाँसुरी के छिद्रों को अधरामृत से भर रहे हैं।[1] मुरली को प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतीक मानते हुए महाप्रभुजी ने "सुबोधिनी" दशमस्कंध की कारिका में ब्रम्हानंद से भी ऊपर बताया है।

श्रोत्रैव सा हि सर्वेषां भगवदीयत्वं संपादयति ।
आनन्दमेव सा प्रकटा द्रवीभूता ब्रम्हानन्दादप्यधिका
आनन्द सारभूता सा न कथंचित साधनता मापद्यते स्वतः ।
॥सुबो॰ दशमस्कंध 21 - श्लोक - 5 ॥

मुरली ही लौकिक भावना से विमुखकर श्रीकृष्ण की ओर अभिमुख करती है। क्योंकि मुरली की ध्वनि से ही भगवान का लीला स्वरूप स्पष्ट होता है।

---

1. रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोप वृन्दै -
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ।।
श्रीमद्भागवत 10.21.5

इतिवेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ।।
श्रीमद्भागवत 10.21.6

तादृशं नादं प्रकटितवान् यच्छ्रवणेन गुणलीला विशिष्टमुद्बुद्ध
रसात्मकं स्वरूपं सर्वेन्द्रिय प्राणान्तःकरण जीवेषु पूर्णमाविर्भूत् ।

सुबो. दशमस्कंध - 21 - श्लोक - 5

मुरली के सात छिद्रों में सुधारस भरने के लिए भगवान उसे अधर पर रखते हैं, इससे नाद की उत्पत्ति होती है। गोपिकाएँ भी उष्ण भक्ति का रहस्य जानकर भी मुरली से ईर्ष्या करती हैं।[1] यही "तापात्मक" भक्ति कहलाती है। इसमें भक्त को विरह का ताप होता है। सूर ने जो विरहवर्णन किया है, वह उष्ण भक्ति का उदाहरण है। इसीसे मुरली का प्रभाव हर जगह दिखाई देता है। पवन का स्थिर हो जाना, जल-प्रवाह का रुक जाना, गोपियों का स्थिर हो जाना मुरलीरव की उष्ण भक्ति रूप में असर है। भगवान कृष्ण अपनी मुरली से समस्त विश्व को मुग्ध कर देते हैं। सूरने इसका सुंदर वर्णन किया है।[2]

---

1. भक्तिर्द्विधा पदांभोज वदनांबुजभेदतः ।
प्रथमा शीतला भक्तिर्यतः श्रवण कीर्तनात् ।।
तथा तत्रैव मुख्य संबंध सुलभा नारदादिषु ।
द्वितीया दुर्लभा यस्यादधरामृत सेवनात् ।।

हरिरायजी कृत - भक्ति द्वैविध्य निरूपण

2. सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर नर नाग निरंतर ब्रज बनिता सब धाईं ।।
जमुना तीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो उरझाई ।
खग मृत मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई।
द्रुम वल्ली अनुराग पुलक तनु, ससि रह्यो निसि न घटाई ।
सूर स्याम वृन्दावन बिहरत चलहु चलहु सुधि पाई ।।

नंददास ने मुरली के प्रभाव से गोपियों की दशा का सुंदर चित्र खींचा है।

कौन ब्रम्ह की जाति ज्ञान कासौं कहो ऊधो ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ ।।
नैन बैन स्त्रुति नासिका मोहन रूप लखाय ।
सुधि-बुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाय ।।
सखा सुनु स्याम के (भँवरगीत)

मुरली स्वर में गोपियों को श्रीकृष्ण के अधरामृत में प्रेम रसका पान करने को मिलता है, और इस जूठे रसमें वे मग्न रहती हैं :-

अजहूँ नाहिन कछु बिगर्‍यौ रंचक पिय आवौ ।
मुरली को झूठो अधरामृत आइ पियावौ ।।
रास पंचाध्यायी नंददास - 3-16

तात्पर्य यह कि महाप्रभुजी ने भगवान श्रीकृष्ण की मुरली को अलौकिक महत्व दिया है। मुरली ध्वनि सुनकर गोपिकाएँ गृहकार्य छोड़कर उस दिशा की ओर दौड़ती हैं जिस ओरसे ध्वनि आति है और अन्तमें रास में सम्मिलित होती हैं।

सूर ने असूया भाव लेकर गोपियों की तीव्र वेदना समझाने के लिए मुरली के संबंध में कितनी वास्तविक और मनोवैज्ञानिक कल्पना की है।[1] भगवान भक्त के सामने पराधीन है। मुरली का आधिदैविकत्व ही भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। प्राय: सभी अष्टछापियों ने मुरली के संबंध में संकेत किया है।

---

1. मुरली वद गोपालहि भावति ।
   सुनरी सखि जदपि नन्दनंदहि नाना भाँति नचावति ।
   राखति एक पाव ठाढ़ौ करि अति अधिकार जनावति
   कोमल अंग आपु आग्या गुरू कटि टेढ़ी ह्वै जावति ।
   अति अधिन सुजान कनौड़े गिरिधर नारि नवावति ।
   आपुन पौढ़ि अधर सेया पर कर पल्लव पद पलुटावति ।
   भृकुटी कुटिल पलक नासापुट हम कोप कुपावति ।
   "सूर" प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डुलावति ।।

## ॥ई॥ गोपीगीत में चित्रित प्रेम का स्वरूप - लीलागान प्राकट्य और महारास

जब गोपियों को ऐसा हो जाता है कि संसार की समस्त स्त्रियों से हम श्रेष्ठ हैं और हमारे समान कोई नहीं हैं। इससे कुछ मानवती हो गयीं क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने उनको इतना महत्त्व दिया तब भगवान ने देखा कि इन गोपियों को अपने सुहाग का गर्व हो गया है और मान भी करने लगी हैं, तब उनका गर्व शान्त करने के लिए तथा मान दूर कर प्रसन्न करने के लिए वहीं उनके बीच में ही अन्तर्धान हो गये।[1]

तब गोपियाँ अपने प्रियतम को ढूँढती हुई चंद्र के प्रकाश तक गईं और आगे गहरा अंधकार देखकर वापस आईं। इतने समय तक वह श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करती रहीं। प्रत्येक गोपी का रोम रोम श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था। अतः श्रीकृष्ण की भावनामें डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजी

---

1. एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ।।
तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।।

श्रीमद्भागवत - 10.29.47,48

के पावन पुलिन - रमणरेती में लौट आईं और एक साथ मिलकर श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगीं।[1] अपने प्रियतम का गान करते करते इतनी तनमय हो गई थीं कि अपनी देह का भान भी भूल गई थीं। यहाँ रमण रेतीमें आकर अपने प्रियतम की स्तवन करने लगी :-

जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रज:
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका -
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।।[2]

अर्थात् विरहीणि गोपियाँ कहती हैं :- तुम्हारे जन्म से ब्रज अधिक महत्व पाता है - वैकुंठ से भी। तभी तो सौंदर्य और मृदुलता की देवी लक्ष्मीजी अपना निवास स्थान वैकुंठ छोड़कर यहाँ नित्य - निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम। देखों तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वन में भटककर तुम्हें ढूँढ रही हैं। यह तो शब्दार्थ है। इसका भावार्थ इस प्रकार हैं :-

---

1. पुन: पुलिनमागत्य कालिन्द्या: कृष्णभावना: ।
समवेता जगु: कृष्णं तदागमनकांक्षिता: ।।
श्रीमद्भागवत - 10.30.45

2. श्रीमद्भागवत - 10.31.1

‡हे कृष्ण वासुदेव । विशुद्ध अन्त/करण रूपी‡ इस ब्रज में ‡अर्थात् इस देह रूपी अहीरों की बस्ती में‡ तुम्हारा जन्म होने के कारण वह उस ‡वैकुंठ से भी‡ अधिक जय पाता है, क्योंकि सौंदर्य और मार्दव की अधिष्ठात्री प्रत्यक्ष लक्ष्मी यहीं इस ब्रज में निरंतर निवास करती हैं।[1] सूर्य को छोड़कर प्रभा और चंद्रको छोड़कर ज्योत्सना कहीं जा सकती है? यह चित्त तो कृतार्थ हो गया। फिर भी ओ प्रियतम । देख तो सही । निर्मल अन्त:करण की शुद्ध मनोवृत्तियाँ ऐसी हम गोपियाँ जिनके प्राण तुम्हारे में ही मग्न हैं ऐसे अन्दर रहे हुए तुम्हे चारों ओर दौड़धूपकर ढूँढती हैं।

---

1. सत्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृत: ।
सत्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ।।

भागवत - 4.3.23

अर्थात् विशुद्ध अन्त:करण का नाम वसुदेव है, क्यों कि उसमें भगवान वासुदेव स्पष्ट आवरण रहित दिखते हैं। उस शुद्ध अन्त: करण में रहे हुए भगवान वासुदेव जो अधोक्षज है - इन्द्रियाँ अन्तर्मुख होते जो अनुभूत होते हैं - उनको मैं नमस्कार किया करता हूँ।

तात्पर्य यह कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के पिछे श्रीकृष्णमय बनकर उनके गुणों का स्मरण करती हैं। श्रीकृष्ण "कान्त" हैं और कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं इसलिए काम्प्रद हैं। गोपियाँ उनको निष्कपट भावसे भजती हैं और धूर्त भी कहती हैं। "विष्णुपुराण" में गोपियाँ श्रीकृष्ण को धूर्त कहती हैं। यहाँ गोपियों के अहंम को धूतने का काम श्रीकृष्ण करते हैं। इसलिए "धूर्त" शब्द का प्रयोग किया गया है।

गोपियाँ श्रीकृष्ण को यादकर कहती हैं कि तुम शरत्कालीन जलाशय में सुन्दर से सुन्दर सरसिज की कर्णिका के सौंदर्य को चुरानेवाले नेत्रों से हमें घायल कर चुके हो। अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करनेवालों में अग्रगण्य यदुवंश शिरोमणे। जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसार के चक्कर से डरकर तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछाया में लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम सब की लालसा - अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला वही करकमल जिससे तुमने लक्ष्मीजी का हाथ पकड़ा है, हमारे सिर पर रख दो।[1]

---

1. विरचितामयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ।।
श्रीमद्भागवत - 10.31.5

इस प्रकार गोपियाँ अपने प्रियतम के भाव में होती गईं और अपनापन खोती गईं। तथा और भी अपनी वेदना व्यक्त करती हुई कहती हैं कि प्यारे श्यामसुंदर! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल परिवार त्यागकर अपनी इच्छाओं और आज्ञाओं का उल्लंघन करके तुम्हारे पास आई हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, संकेत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गान की गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आई हैं। कपटी इस प्रकार रात्रि के समय आई हुई युवतियों को तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है?[1]

तथा जब चलते चलते बिलकुल थक जाती हैं तब अत्यधिक थकान का अनुभव करती हुई कहती हैं :- हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिए है, हम तुम्हारे लिए जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं।[2]

---

1. पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा -
   नतिविलंघ्य तेऽन्त्य च्युतागता: ।
   गतिविदस्तवोद्गीतमोहिता:
   कितव योषित: कस्त्यजेन्निशि ।।
   श्रीमद्भागवत - 10.31.16

2. तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् ।
   कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां न: ।।
   श्रीमद्भागवत 10.31.19

इस प्रकार व्रजांगनाएँ निर्व्याज प्रेम से अर्थात् परकीया भाव से अपने प्रियतम का गुणगान करती हैं। ये अपना सब कुछ छोड़कर आई हैं। यहाँ जार भाव है, परंतु पार्थिव नहीं। सांसारिक दृष्टि से यह जार भाव या परकीया भाव दिखाई दें, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से तो श्रीकृष्ण और गोपियों का आत्मा और वृत्तियों का संबंध है अर्थात् कोई भेद नहीं। अतः जब अपने प्यारे के लिए रोने लगी तब गोपियों के निर्व्याज प्रेम से अभिभूत होकर साक्षात् मन्मथ मन्मथ - सभी के मन को मथ डालनेवाले साक्षात् कामदेव के मनको भी मथ डालनेवाले श्रीकृष्ण स्वयं परमात्मा गोपियों के बीच प्रगट हुए। बड़े बड़े योगेश्वर जिनको अपने हृदयसिंहासन पर बैठाने की अभिलाषा रखते हैं, फिर भी नहीं बैठा सकते, ऐसे सर्व शक्तिमान भगवान यमुनाजी की रेत में गोपियों की ओढनी पर बैठे। इस समय भगवान के सौंदर्य की तुलना में तीन लोक का सौंदर्य कुछ भी नहीं है ऐसा दृश्यमान होता है। जब भगवान आये तो गोपियों के नेत्र प्रेम और आनंद से खिल उठे और उनके शरीर में चेतना आ गई। कोई गोपीने उनका करकमल अपने हाथ में ले लिया, दूसरीने दूसरा हाथ अपने कंधे पर ले लिया, तीसरी ने भगवान का चबाया हुआ पान अपने मुँहमें ले लिया तथा चौथी ने भगवान के चरणकमल को अपने वक्षःस्थल पर ले लिए। इस प्रकार सभी गोपियाँ अपने प्रियतम का नैकट्य प्राप्त करने लगीं। तब गोपियों ने पूछा कि नटनागर। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालों से ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालों से प्रेम करते हैं।

परन्तु कोई-कोई तो दोनों से प्रेम नहीं करते। प्यारे इन तीनों में से तुम्हें कौन सा अच्छा लगता है?[1]

श्रीकृष्ण ने उत्तर देते हुए गोपियों से कहा - मेरी प्रिय सखियाँ। जो प्रेम करते हैं उनका उद्योग सारा स्वार्थमय है। जो प्रेम न करनेवालों से प्रेम करते हैं ऐसे माता-पिता के हृदय सौहार्द से भरा रहा रहता है। कुछ लोग प्रेम करनेवालों से भी प्रेम नहीं करते। न प्रेम करनेवालों का तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे लोग चार प्रकार के होते हैं :-
एक तो अपने स्वरूप में मस्त रहनेवाले जिनको कभी द्वैत भासता ही नहीं है। दूसरे वे जिन्हें द्वैत भासता है, परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं, उनका किसीसे कोई प्रयोजन नहीं। तीसरे वे जिनको पता ही नहीं है कि उनको कौन प्रेम करता है तथा चौथे वे हैं जो जान बुझकर अपने गुरूतुल्य लोगों से द्रोह करते हैं। गोपियाँ। मैं तो प्रेम करनेवालों से प्रेम नहीं करता हूँ इसलिए कि उनकी चित्तवृत्ति मुझमें लगी रहें। जिस प्रकार निर्धन को बहुतसा धन मिल जाय और खो जाने पर उसमें ही उसका चित्त लगा रहता है, उसीप्रकार तुम्हारा चित्त मेरे में ही निरंतर लगा रहे इसीलिए परोक्ष रूप-रूप से तुम लोगों से प्रेम करता हुआ मैं छिप गया था। इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने मेरे लिए लोक-मर्यादा, वेदमार्ग औरअपने सगे संबंधियों को भी छोड़ दिये हैं। ऐसी स्थिति में तुम्हारी मनोवृत्ति कहीं न जाय, अपने सौंदर्य और सुहाग की चिन्ता न करने लगे, मुझमें लगी रहे, इसीलिए तुम लोगों से छिप गया था। मेरे प्रेम में

---

1. भजतो नुभजन्त्येक एक स्तदिपर्ययम् । नोभयांश्च भजन्त्येक स्तन्नो ब्रूहि साधु भोः ।।
श्रीमद्भागवत् 10.32.16

दोष मत निकालो। प्रियतमाएँ। जिनको बड़े योगीजन भी तोड़ नहीं सकते ऐसी घर-गृहस्थी की कठिन की बेड़ियों को तुमने तोड़ डाली हैं। मेरा और तुम्हारा यह मिलन अत्यन्त निर्मल है। यदि मैं अमर जीवन से अनन्त काल तक तुम्हारे इस निर्मल प्रेम का बदला देना चाहूँ तो भी दे नहीं सकता। तुम अपने साधु स्वभाव से सज्जनता से, प्रेम से ऋण मुक्त कर सकती हो। परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।[1]

महारास

इस प्रकार अपने प्रियतम की अत्यन्त मृदु सुन्दर वाणी सुनकर गोपियों का विरहा ताप जाता रहा। श्रीकृष्ण और गोपिकाएँ एक दूसरे की बाँहयें हाथ डाले खड़ी थीं। फिर तो दो गोपियों के बीच श्रीकृष्ण प्रगट हो गये और महारास का प्रारंभ हुआ। रासमंडल में सभी गोपियाँ श्यामसुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं। सभी ऐसा ही समझती थीं कि हमारे साथ श्रीकृष्ण हमारे पास हैं। उनके कंकन, नूपुर और करधनी का झनकार एक साथ होने लगा। उस समय मानों कि सोने की अनगिनत मणियाँ - हेममणियों के बीच ज्योतिर्मय महामरकतमणि - नीलमणि चमकते हों ऐसी अपूर्व शोभा बनी। श्यामल मेघमंडल के बीच कृष्णगान करती कृष्णवधूएँ चमकती बिजली की तरह शोभित हुईं। श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करते करते ऊँचे स्वर से मनोरम कंठ से गायन करती वे रतिप्रिय प्रमुदित गोपियों

---

1. श्रीमद्भागवत - 10.32.15 से 22 तक का भाव

के गान से यह सारा जगत भी गूँज रहा है। रास-मंडल में एक गोपी नृत्य कर रही थी। नृत्य के कारण हिलते कुंडल की छटा के कारण उसके गाल कुछ और ही चमकते थे। उसने अपने गाल भगवान के गाल के साथ लगा दिए और नन्दके श्रीकृष्णने अपने मुँह में चबाया हुआ पान उसके मुँह में रख दिया। इस प्रकार क्रीड़ा करते ब्रम्हा की रात्रि जैसी वह रात्रि बीत गई। भगवान को प्रिय ऐसी और जिनको भगवान प्रिय हैं ऐसी गोपियों की इच्छा घर जाने की नहीं थी, फिर भी श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर अपने अपने घर गईं इसलिए कि वे अपनी हर क्रीड़ा से अपने प्रियतम को प्रसन्न करना चाहती थीं। जो धीर पुरूष व्रजवनिताओं के साथ श्रीकृष्ण ने की हुई रासक्रीड़ा को बार-बार श्रवण और वर्णन करता है उसे भगवान की परा भक्ति - उत्तम भक्ति प्राप्त होती है और उसका हृदय रोग "काम" अर्थात् कामनामात्र, लालसामात्र का अत्यंत शीघ्र ही नाश होता है।[1]

निष्कर्ष

ऊपर श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का रमण, श्री राधिकाजी के साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियों के द्वारा दिए हुए आसन पर बिराजना, गोपियों के कूट प्रश्न, उनका उत्तर, रास नृत्य आदि मानवी भाषा में होने पर भी परम दिव्य हैं।

---

1. श्रीमद्भागवत - 10 स्कंध 33वें अध्याय का भाव।

भगवान की आज्ञा मानकर सभी गोपियाँ अपने स्थान पर वापस लौटीं। परंतु उनकी भगवान के साथ जो क्रीड़ा हुई, वह मधुरा भक्ति की अत्यंत उज्ज्वल अवस्था है, जिसमें मुक्ति दासी है। गीतामें "गुणत्रयविभागयोग" में भगवानने अपने श्रीमुख से कहा हैं :-

ब्रम्हणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।

गीता - 14-27

अर्थात् अविनाशी ब्रम्ह की अमृत अर्थात् मोक्ष की, शाश्वत धर्म की और एकान्तिक सुख की प्रतिष्ठा हूँ - इन सभी का आश्रय हूँ। तात्पर्य यह कि मधुर भाव या महाभाव में आरूढ़ भक्तों को इन वचनों का अनुभव होता है। मधुरा भक्ति का दिव्य भावावेश कोई कल्पना नहीं है, सच्ची अनुभूति है। उनके भक्त कभी मुक्ति की कामना नहीं करते। नरसिंह महेता जो गुजराती साहित्य के आदि कवि एवं श्रीकृष्ण के परमभक्त थे उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से भगवान की रासलीला का दर्शन किया है। उन्होंने कभी मुक्ति की कामना नहीं की। उन्होंने अवतार की कामना की।[1]

---

1. हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जनमोजनम अवतार रे।
नित सेवा नित कीर्तन ओच्छव, नीरखवा नंदकुमार रे ।
धन वृन्दावन, धन ए लीला, धन ए ब्रजनां वासी रे ।
अष्ट महासिद्धि आंगणिये ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे ।

नरसिंह महेता

सनत्कुमार ऋषिओं ने भगवान से प्रार्थना की है कि जो भक्त आपके चरणकमल में रहते हैं - जिनका मन लगा रहता है, वे स्वर्ग के सुख की कामना ही क्यों करें?[1] तथा कपिल भगवान मातादेवहूति से कहते हैं कि अहैतुकी भक्ति करनेवाले निष्काम भक्त, देने पर भी पाँच प्रकार - सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य - की मुक्ति का स्वीकार नहीं करते।[2] तथा भागवत - माहत्म्य में नारदजी ने भक्ति से कहा :- तेरे पर प्रसन्न होकर हरिने तेरी सेवा करने के लिए मुक्ति को दासी के रूप में और ज्ञान - वैराग्य को पुत्र के रूप में दिये हैं। तात्पर्य यह कि मधुराभक्ति को प्राप्त करनेवाला भक्त मुक्ति की कामना नहीं करता। यहाँ भगवान के मधुर प्रेम का दर्शन होता है। गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी हैं। साधना की दृष्टि से उन्होंने केवल जड़ शरीर का ही नहीं, स्वर्ग और कैवल्य मोक्ष का भी त्याग कर दिया। जिन्होंने उनको पहचाना, उन लोगों ने गोपियों के चरणरज की कामना की। उनका भाव साधारण स्त्री-पुरुष जैसा भाव नहीं है - शरीर सुख-भौतिक सुख जैसा कोई भाव नहीं है। उनका तो अलौकिक भाव है। गोपियाँ भगवान की स्वरूप भूला अन्तरंग शक्तियाँ हैं और भगवान का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है तथा वे अजन्मा और अविनाशी है। इनका संबंध दिव्य है। "चीरहरण" प्रसंग भक्ति के क्षेत्र में महत्व का है।

---

1. 3.15.48 ‖भागवत‖

2. 3.29.13 ‖भागवत‖

श्रीकृष्ण का भगवत्स्वरूप शरीर चिदानन्दमय है - अस्थिरक्तमांसमय नहीं । उनका एक एक अंग पूर्ण श्रीकृष्ण है। उनका शरीर कर्मजन्य है। इसलिए तो उपनिषद में उनको "अखंड ब्रम्हचारी" बतलाया है। तात्पर्य यह कि गोपियों की भगवान के साथ जो लीला हुई, वह लौकिक नहीं, पारलौकिक और आध्यात्मिक है।

"चीरहरण प्रसंग" भक्ति के क्षेत्र में भगवान और भक्त के बीच जो लौकिक आवरण है, उसे हटाना है। भगवान तो योगेश्वर कृष्ण हैं। गोपियों की साधना पूरी हो चूकी है। अपना मन भगवान के मनमें मिला दिया था। अत: भगवान की बांसुरी बजते ही सभी गोपियाँ दौड़ती हुई आती हैं। लौकिक दृष्टि से यहाँ गोपियों का परकीया भाव है। इस भाव में प्रियतम की ओर आकर्षण अधिक होता है। इसलिए जार पुरूष के रूप में श्रीकृष्ण को स्वीकार करती हैं। यह रही दुन्यवी दृष्टि। वास्तव में गोपियाँ वैराग्य और प्रेम की पूर्णता है। भगवान इसलिए संसार में कर्म करते हैं कि लोग कर्म करना न छोड़ दें।[1] भगवान चाहते हैं सभी जीव मेरी शरण में आवें।[2]

---

1. यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्य तन्द्रित: ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश: ।।
3.23 - गीता

2. सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
18.66 - गीता

गोपियों का पति-पुत्रों धर्म का त्याग इसीलिए हुआ है। देवर्षि नारदजी भी कहते हैं :- जो वेदों का (वेदमूलक समस्त धर्ममर्यादाओं का) भी भलीभाँति त्याग कर देता है, वह अखंड असीम प्रेम को प्राप्त कर देता है।[1] तात्पर्य यह कि गोपियों का त्याग श्रीकृष्णमय बनना ही है। भगवान बड़े लीलामय हैं। उन्होंने वंशी-निमंत्रण से गोपियों को बुलाई और शायद उन्हीं के मुखसे प्रेम की बात सुनना चाहा। गोपियों की प्रार्थना से यहबात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी योगेश्वरेश्वर, परमात्मा के रूपमें पहचान थीं और पति के रूपमें उनसे प्रेम करती थीं जो शास्त्रों में मधुर भावके - उज्ज्वल परमरस के नामसे कहा गया है। गोपियों के भावमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य ये चारों भाव अन्तर्भूत हो जाते हैं। वियोग ही संयोग का पोषक है, मान और मदही भगवान की लीला में बाधक हैं। इसीलिए भगवान अन्तर्धान हो जाते हैं। परन्तु गोपियों के अलौकिक प्रेमोन्माद को देखकर भगवान उनके सामने "साक्षान्मन्मथ मन्मथः" के रूपमें प्रगट होते हैं और गोपियों से कहते हैं :- गोपियाँ, मैं तुम्हारे प्रेम भाव का चिर-ऋणी हूँ। यदि मैं अनन्त काल तक तुम्हारी सेवा करता रहूँ, तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मेरे अन्तर्धान होने का प्रयोजन तुम्हारे चित्त को दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेम को और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।[2]

---

1. वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।

नार.भ.सू.49

2. श्रीमद्भागवत - 10.33.21 से 22 का भाव

अब यहाँ प्रश्न यह है कि गोपियाँ स्वकीया थीं या परकीया ?
श्रीकृष्ण परब्रम्ह स्वरूप हैं और गोपियाँ उनकी अन्तरंग शक्तियाँ हैं। वे पतिरूपमें ही श्रीकृष्ण की उपासना करती हैं। अत: "जार भाव" या "औपत्य" भाव का कोई अर्थ ही यहाँ नहीं है। गोपियाँ परकीया नहीं, स्वकीया थीं। उनमें परकीया भाव जरूर था। परकीया भावमें अपने प्रियतम का चुंबन, मिलन की कामना दोष दृष्टि का अभाव प्रधान होते हैं और स्वकीया भावमें ये गौण होते हैं क्योंकि वियोग का अभाव है। कुछ गोपियाँ जार भावमें श्रीकृष्ण को चाहती थीं क्योंकि उनका चित्त मिलने की उत्कंठा बनी रहे। पति रूपमें जब स्त्री पति को चाहती है तब अनेक कामनाओं के साथ प्रेम करती हैं। परकीया भाव में सकाम भावना नहीं होती। वह अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती। गोपियों स्वकीया होने पर भी परकीया भाव धारण करती हैं, इसका तात्पर्य यही है। भगवान और गोपियों की लीला आध्यात्मिक है। भौतिक दृष्टिवालों की मलीन दृष्टि में इसका भाव नहीं समा सकता। भगवान श्रीकृष्ण आत्मा हैं, आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाह रूप से निरन्तर आत्मरमण ही रास है। "रासपंचाध्यायी" श्रीमद्भागवत का प्राण है तथा भक्ति के क्षेत्र में उसका उत्तम महत्त्व है। भगवान की इस दिव्य लीला का प्रयोजन जीव गोपियों के इस अहैतुक प्रेम का जो श्रीकृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए था, उसका स्मरण करें और भगवान के प्रेम का अनुभव करें। अष्टछापी का भक्तों ने अपने-अपने ओसरे

के समय और अन्य समय तथा "रास" के उत्सव के समय भगवान के इस महारास को अपने कीर्तनों में उतारा है तथा अपने आराध्य की झाँकी पाकर अपनी अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया है।

Chapter – 3



अध्याय – तृतीय

## अष्टछापी कवियों की कीर्तन सेवा में रास वर्णन ।

श्रीमद्भागवत में रास पर पाँच अध्याय हैं, उसे "रासपंचाध्यायी" कहते हैं। वैष्णव मंदिरों में रासोत्सव का अधिक महत्व है। आश्विन शुक्ल 15 शरद काल में रासोत्सव का आयोजन मंदिरों में किया जाता है। रासपंचाध्यायी को श्रीमद्भागवत का हृदय कहा जाता है। श्री गोपेश्वरजी "पीठिका – भावना" में लिखते हैं :-

"शब्दात्मको भगवान निबंधे भावनांतरे चास्ति। प्रथम द्वितीय स्कंधौ चरणौ, तृतीय चतुर्थौ जंघे उरू दक्षिण श्री हस्तः स्तनभागौ। हृदयम्, शिरः वाम श्रीहस्तः कूर्पेण।"

इसके अनुसार दशम स्कंध हृदय है। संपूर्ण भागवत का तात्पर्य इसी स्कंध में है। अध्याय 29 से 33 तक का यह भाग तामस फलु प्रकरण के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि इसमें तामस ॥निःसाधन॥ भक्तों के निरोध का वर्णन है और वह अत्यन्त गुप्त होने से फल प्रकरण कहलाता है।

रास के संबंध में "रसानां समूहो रासः।" कहा गया है तो किसीने "चारू कीड़ा"[1] कहा है। आचार्य वल्लभ ने "रास" के संबंध में कहा है :- "बहु नर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रासः।"[2] अर्थात् अनेक नर्तकियों से युक्त नृत्य विशेष को रास कहते हैं। इसी को उन्होंने आध्यात्मिक रूप दिया है। उन्होंने सुबोधिनी में कहा है कि ब्रम्हानंद रूपी हृदय सरोवर में निमग्न गोपीजनों का उद्धार करके उनको भजनानंद का दान करने के लिए ही प्रभु ने रास क्रीड़ा की है।[3] इस लीला के नायक हैं श्रीकृष्ण। ये आनंद-रूप-रस-स्वरूप हैं। तथा गोपिकाएँ इनकी शक्तियाँ हैं। भगवान का रूप भावात्मक है। जो जिस रूप से - भाव से भजता है उसे उसी भाव से मिलते हैं।[4] रासलीला भक्तों की भावाभिव्यक्ति है। रसात्मक ब्रम्ह के साथ स्वशक्तियों का रमण करना रासलीला है। भागवतकार ने इसे भक्ति का स्वरूप और स्तर का रूप दिया है। इस दिव्य रासलीला का एक मात्र उद्देश्य मनमथ दर्प हनन है। भागवत गूढार्थ दीपिका में लेखक ने टीका में लिखा है कि :- "इन्द्र वरूण आदि के विजय में क्या विशेषता हैं।

---

1. रास कन्दुक खेलाद्या चारू कीडात्र कीर्तिता।

उ. नी. मणि.

2. सुबोधिनी ।

3. ब्रम्हानंदात्समुद्धृत्य भजनानंद योजने ।
लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते ।।

सुबोधिनी दशम - स्कंध अ. 29.।

4. यं यं वापि स्मरन्भावं ।। गीता 8।6

ब्रम्हादिक को जय करके काम को बड़ा दर्प हो गया था अतः उसी काम को भगवान ने पराजित कर दिया। इसीलिए भागवत का लक्ष्य रासक्रीड़ा वर्णन है।[1] जीवगोस्वामी ने रासक्रीड़ा के संबंध में कहा हैं :- "ब्रम्हा, इन्द्र, अग्नि आदि का दर्प दलन करके भगवान ने कामदेव का दर्प दूर करने के लिए ही अनेक रमणियों से संवलित होकर रास नाम की क्रीड़ा को किया।"[2] रासलीला द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने काम का मथन-कर डाला। इसीलिए भागवतकार ने उनकी प्रार्थना करते हुए - "साधात्मन्मथमन्मथ" कहा है। आचार्य वल्लभ ने सुबोधिनी में कहा हैं कि रासक्रीड़ा में काम का अभाव है। भगवान सतत निष्काम बने रहे हैं। इसलिए भगवान का चरित्र ही निष्काम है।

---

1. इन्द्र वरूणादि विजये किं चित्रम् ?
   ब्रम्हादि जय सरूढदर्पः कामोऽपि भगवता पराजितः ।
   इति ख्यापनार्थं कृमप्राप्तां भगवत कृतां रास क्रीडा वर्णयितुमुपक्रियते ।।
   श्रीधक्रियत्ति कृत मा. गू. दी. द. स्कंध।
2. अथ ब्रम्हेन्द्राग्नि वरूणादीनां दर्प शमयित्वा कंदर्पस्य दर्प
   शमयितुं युगपदनेक रमणीं कदम्ब संबलित रासात्मना
   कस्यमारिप्सुर्भगवानेकदा स्वयोगवैभवं प्रादुश्चकार ।।
   जीवगोस्वामी कृत बृहत्क्रम संदर्भ

इसीप्रकार श्रीमद्भागवत पर टीका करनेवाले सभी एकमत हैं कि रासलीला का उद्देश्य कंदर्प दलन है। सभी मंदिरों में अष्टयाम सेवा के समय पर कीर्तन सेवा होती है। अष्ट सखाओं को उनका ओसरा दिया गया था तथा वर्ष के सभी उत्सवों के समय पर विविध प्रकार के श्रृंगार भगवान को किये जाते हैं और ऋतुओं के अनुसार भोग भी लगाया जाता है। श्रीनाथजी के मंदिर में आश्विन सुदी 15 के दिन और रात के समय रास का आयोजन किया जाता है। अन्य वैष्णव मंदिरों में भी रास का आयोजन किया जाता है।

अष्ट सखाओं का कार्य अपने और अन्य ओसरे के समय अपने आराध्य के सामने बैठकर अपने आराध्य की झाँकी पाना और उसके अनुसार कीर्तन बनाना। बसन्त और शरद ऋतु में रास का आयोजन किया जाता है। सूर ने दोनों का वर्णन किया है, परमानंद ने केवल शरदरास का वर्णन किया है। नित्य सेवा में जो कीर्तन बनते वे दैनिक सेवा के बनते। परंतु जब उत्सव होता तो उसके अनुसार अष्टसखा कीर्तन बनाते। इसीकारण से अष्टसखाओं ने रास वर्णन अपने कीर्तनों में उतारा है। सूर को श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका श्री महाप्रभुजी ने सुनाई थी और श्रीमद्भागवत को सुनाया - संपूर्ण। इसीके परिणाम स्वरूप उन्होंने श्रीमद्भागवत के अनुसार केवल भाव-छाया लेकर अपने आराध्य की लीला का गान किया। परंतु उन्होंने भागवत को अपने सामने नहीं रखा। उन्होंने जो लीलागान किया वह गुरूकृपा और भगवाद कृपा ही थी। सूर का रास का पद इसमें भागवत की छाया मात्र है। शेष सब उनकी मौलिकता और भक्ति है।

मोहनरच्यौ अदभुत रास। राग-नट

संग मिलि वृषभानु तनया गोपिका चहुँपास ।।
एक ही सुर सकल मोहे, मुरलि सुधा-प्रकास ।
जलहु थला के जीव थकि रहे, मुनिनि मनहिं उदास ।।
थकित भयौ समीर सुनि कै, जमुना उलटी धार ।
सूर - प्रभु ब्रज-बाप मिलि बन, निसा करत विहार ।।[1]

नन्ददास तो अति विद्वान थे। उन्होंने श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया था। परंतु केवल "रासपंचाध्यायी" का काव्यानुवाद मिलता है। वह इतना उत्तम है कि उनकी सुन्दर काव्यशक्ति का परिचय देता है। नन्ददास भी उच्च कोटि के भक्त थे। कुंभनदास गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी तो अनन्य भक्त थे। उन्हीं लोगों ने उत्सव के अनुसार रासवर्णन किया है। कृष्णदास जी को मंदिर की व्यवस्था से समय ही न मिलता था। अतः केवल अपनी भक्ति प्रदर्शन के लिए उन्होंने रास वर्णन किया है। परमानंददासजी तो भागवत के ज्ञाता थे। अतः रासवर्णन में स्वाभाविकता आना संभव है। तात्पर्य यह कि सभी ने रासपंचाध्यायी का वर्णन छाया रूप में या भाव रूप में किया है।

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - पद. 175।

परंतु प्रधान कारण यह है कि पुष्टि संप्रदाय में श्रीमद्भागवत मान्य धर्म ग्रंथ है। उसमें दशम स्कंध भगवान की लीला का वर्णन है। रासपंचाध्यायी के पाँचों अध्याय - मुरलीनाद, गोपीगीत, लीलागान, प्राकट्य और महारास - ये भक्ति के उद्भव और विकास के स्वरूप हैं। अत: इन अध्यायों में जो भाव है, वर्णन है, उसका कीर्तन करना अष्टसखाओं के लिए स्वाभाविक था। यही उनकी भक्ति थी। अष्टसखाओं का रासवर्णन भागवत पर आधारित है, फिर भी भक्ति के क्षेत्र में उनकी मौलिक उद्भावना है। अत: अष्टछापी कवियों की कीर्तन सेवा में रास वर्णन का होना स्वाभाविक एवं सांप्रदायिक है।

Chapter-4



अध्याय चतुर्थ

## अष्टछापी कवियों के रासवर्णन में मौलिकता

श्रीमहाप्रभुजी एवं उनके सुपुत्र श्री विठ्ठलनाथजी की कलात्मक सूझ और व्यवस्था के कारण श्रीनाथजी के मंदिर में अष्टयाम सेवा का स्वरूप सुंदर एवं कलात्मक बना जिसके परिणाम स्वरूप अनेक लोग इस संप्रदाय की ओर आये तथा प्रवेश किया। अन्य संप्रदायों की अपेक्षा इस संप्रदाय में संसार में रहकर सेवा भक्ति का माहात्म्य अधिक है, इससे भक्ति के क्षेत्र में जो स्वतंत्रता है, यही उत्तम है। अष्टसखाओं ने अपने ओसरे के समय जो कीर्तन बनाये उनमें उनकी भक्ति भावना का प्रतिबिंब देखा जाता है। संप्रदाय की शिक्षा इन लोगों को संप्रदाय के विद्वानों के सत्संग से मिली थी। इसीलिए उनके पदों में भाव का प्राधान्य है। इन सखाओं का प्रधान कार्य भक्ति करना था और अपनी भावना को कीर्तनों में उतारना था। काव्य बनाने का उद्देश्य नहीं था, न यश कमाने की तमन्ना थी। जिस प्रकार तुलसीदास ने अपने "रामचरित मानस" के प्रारंभ में स्पष्ट कह दिया है कि इस कृति की रचना मैंने "स्वान्तः सुखाय" की है। इस में यश और अर्थ की अभिलाषा नहीं है। इसी प्रकार अष्टसखाओं में भी "स्वान्तः सुखाय" की भावना थी। इसी कारण से अष्टयाम सेवा के समय भगवान के श्रृंगार और स्वरूप देखकर इन लोगों ने कीर्तन बनाये। अष्टसखा उच्च कोटि के भक्त थे और अपने आराध्य को

नैकट्य प्राप्त कर चूके थे। इसी कारण से उनको भगवान की लीला का दर्शन हुआ करता था और इसी के परिणाम स्वरूप ये कीर्तन किया करते थे। परंतु प्रधान कारण उनकी आन्तरिक प्रेरणा है और भावना है। यह प्रेरणा और भावना मौलिक है। इसी के परिणाम स्वरूप उनके पदों में भागवत की छाया मात्र होने पर भी उनमें संपूर्ण रूप से मौलिकता का दर्शन होता है। सूरदास, परमानन्ददास, और नन्ददास अष्ट सखाओं में प्रथम स्थान पाते हैं। अन्य केवल अपनी भक्ति के सहारे हृदय की प्रेरणा से भगवान का कीर्तन करते हैं। तात्पर्य यह कि अष्टसखाओं के रास के कीर्तनों में भाव और मौलिकता का प्राधान्य है।

1. कुंभनदासजी

कुंभनदास गृहस्थी[1] थे। अत: मंदिर में अपने ओसरे के समय आते थे। उनका ओसरा राजभोग का था और ये निकुंजलीला के गायक थे। लीला संबंध में अर्जुन सखा और विशाखा सखी थे। उन्होंने अपने गुरू श्री महाप्रभुजी की कृपा और अपने आराध्य की अनुकम्पा प्राप्त कर राजभोग के समय अनेक कीर्तन बनाये। समय मिलने पर अन्य ओसरे के समय पर भगवान के दर्शन के लिए आते

---

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता -

वार्ता 30 कुंभनदास की वार्ता

थें और कीर्तन बनाते गाते। श्रृंगार के समय का कीर्तन "रास भावना" वाला है जिसमें उनकी भक्ति भावना का दर्शन होता है।

राग बिलावल

चलहु राधिके सुजान तेरे हित गुन निधान रास रच्यौ
कुंवर कान्ह तट कलिंदनंदिनी।
नर्तत युवती समूह रास रंग अति कुतूहल बाजत रस मुरलिका
आनन्दनी ।।
बंसीबट निकट जहां परम रमन भूमि तहां सकल सुखद बहत
मलय वायु मंदिनी ।
जाती ईषद विकास कानन अतिसय सुवास राका निस
सरद मास बिमल चांदनी ।।
"कुंभनदास" प्रभु निहार लोचन भरि घोखनारी जख सिख
सौन्दर्य सीम दुखनिकन्दनी ।
विलसो भुज ग्रीव मेलि भामिनी सुख सिंधु झेल गोवर्धनधरन
केलि जगतवंदिनी ।।[1]

---

1. कीर्तन प्रणाली के पद -
सं :- 237

अमर के पद में पूर्णिमा की रात के समय श्रीकृष्ण ने रास का आयोजन किया है उस समय श्री राधा की सखि उसे उसमें सम्मिलित करने के लिए ले जाती है। रास के समय प्रकृति का सौंदर्य, अद्भूत है, उस ओर संकेत है। सखि और राधा के द्वारा कुंभनदास अपनी भक्ति भावना को कितने अनन्य रूप से व्यक्त करते हैं। रास में सम्मिलित होना अर्थात् अपने आराध्यमय बनना ऐसी भावना की ओर संकेत है। भावना, शब्दचित्र, तथा हृदय की गहराई कितनी विशद और मौलिक है। भागवतकारने जिस रूप में प्रकृति का, भावना का तथा भक्ति का जो वर्णन किया है, उसी ओर संकेत किया है।

रागसारंग

नवरंग दुलहे रास रच्यौ।[1]
आसपास ब्रजयुवती राजति, सुधर राग सारंग सच्यौ ।।
ललितादिक मृदंग बजावत, तान तरंग सुरंग खच्यौ ।
"कुंभनदास" प्रभु गोवर्धन धर, लाग डाट मिलि नीकैं नच्यौ ।।

---

1. धोल-पद-संग्रह. ।रास के पद। -
पृष्ठ - 213

प्रस्तुत पद बसन्त ऋतु का रास है जिसमें सभी मिलकर रास का आनंद सुरंग के साथ लूँटना चाहते हैं। सभी गोपियों के बीच श्रीकृष्ण दुलहें जैसे हैं तथा ललितादिक सखियाँ वाद्य यंत्र बजाती हैं और सारंग राग में गान तथा नृत्य दोनों होते हैं। यहाँ शब्द चित्र सुंदर है, अनन्य भाव है और भक्ति की चरम सीमा है। शब्दों और अभिनय में गति है। यही कुंभनदास की सूक्ष्मदृष्टि तथा मौलिकता है जो हृदय की प्रेरणा है। कुंभनदास के पद बहुत कम मिलते हैं परंतु जो मिलते हैं वे अद्भूत हैं। यहाँ केवल दो पदों की भावना ली गई है।

2. परमानन्ददासजी

परमानन्ददास के पदों का अभ्यास करने से विदित होता है कि उन्होंने रास के पदों में भागवत का आधार लिया है। उन्होंने रास के अद्भूत स्वरूप का वर्णन किया है। रासपंचाध्यायी के पांच अध्याय हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने महारास का संकल्प किया तब शरद ऋतु थी और चारों ओर का प्राकृतिक वातावरण सुगंधित था। उस समय प्राची दिशा में चन्द्र मंडल अखंड था, पूर्णिमा की रात्रि थी। तथा वह नूतन केशर के समान

चन्द्र लाल-लाल हो रहा था।[1] परमानंददास ने इसी का वर्णन अपने पदों में किया है।

सरद विमल निसि चंद विराजित,
क्रीडत जमुना कूलै हो ।
परमानंद स्वामी कौतूहल,
देखत सूर नर भूलैं हो ।

परमानन्द ने जैसा भागवत में वर्णन है वैसा करना चाहा है।

भगवान महारास का जब संकल्प करते हैं तब उन्होंने अपनी मुरली की मधुर तान छेडी।

---

1. भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ।।
तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।।

भागवत - 10.29.1,2.

राग सारंग

कर गहि अधर धरी मुरली ।
देखहु परमेश्वर की लीला ब्रज बनितानु की मन चुरली ।।
जाको नाद सुनत गृह छाँड्यो प्रचुर भयो तन मदन बली ।
जिहिं सनेह सुत पति बिसराये हा हरि हा हरि करत चली ।।
बिहँसत बदन प्रफुलित लोचन रबि उद्योत जनु कमल कली ।
"परमानन्द" प्रीति पद अंबुज कृष्न समागम बात भली ।।[1]

इस पद में वही भाव लिया है जो भागवत के रासपंचाध्यायी के 29वें अध्याय में लिया गया है। भगवान संकल्प करके मुरली की तान छेड़ते हैं जिसे सुनकर गोपियाँ अपने पति-पुत्र संबंधी सभी को छोड़कर मुरली-ध्वनि की ओर दौड़ पड़ती हैं और "हा हरि - हा हरि" चिल्लाती हुई आगे बढ़ती हैं। जब अपने प्रियतम का दर्शन करती हैं तो उनका मुख कमल के समान विकसित होता है - प्रसन्न होता है। यहाँ तन्मयासक्ति और रूपासक्ति दोनों का दर्शन होता है।

---

1. "परमानन्दसागर" सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल
- सं. 215

गोपियाँ अपने हृदय में यह भाव प्रदर्शित करती हैं हम यमुना तट पर जाकर अपने प्रियतम का दर्शन करेंगी।

राग आलव

जाऊँगी वृन्दावन भेटोंगी गोपाले ।
देखौंगी नैन भरि स्याम तमाले ।।
कालिंदी तट चारत धेनु ।
संग सखा बजावत मृदु बेनु ।।
मोर मुकट गुंजा अवतंस ।
दसन बसन कूजत कल हंस ।।
"परमानन्द" प्रभु त्रिभुवन पाल ।
लीला सागर गिरधर लाल ।।

यही लीला सागर जब गोपियों के मान और अंत के कारण अदृश्य हो जाते हैं जब उनकी क्या दशा होती है ? इसी का वर्णन परमानन्द दासजी ने किया है।

---

1. परमानन्द सागर सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल –
सं. 226

राग सारंग

पूछत है खग मृग द्रुम बेली ।
हमें तजि गये री गोपाल अकेली ।।
अहो चंपक मालती तमाला ।
तुम्हि परसि गये नंद लाला ।।
ज्यों गजराज बिना गजकरनी ।
कृष्णा सार बिनु व्याकुल हरिनी ।।
"परमानंद" प्रभु मिलहु न आई ।
तुम दरसन बिन हंस उड़ाई ।।[1]

भगवान अदृश्य हो जाते हैं। बाद की दशा का चित्र भागवत के आधार पर है। भगवान में गोपियाँ इतनी तन्मय हो गई है कि वृक्ष, लता, हरिनी से पूछती हैं उनके प्रियतम कहाँ गये। पूछने में कितनी व्यथा, वेदना, प्रेम और मिलने की उत्सुक्ता है, यह स्पष्ट है। विरह की सच्ची भावना का दर्शन होता है। गोपियों के इसी प्रकार के तप में उनका मान-अहं पिघल जाता है। यहाँ अपने प्रियतम बन जाती हैं। फिर श्रीकृष्ण का आना होता है और महारास की तैयारी होती है। दो गोपियों के साथ एक-एक कृष्ण हो जाते हैं और महारास का प्रारंभ होता है।

---

1. परमानन्द सागर सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल -
सं. 236

राग जंगला

मंडल जोरि सबै एकत्र भये निरतत रसिक सिरोमनी ।
मुकुट धरे सिर पीत पट कटि तट बाँधे तान लेन बनी ठनी।।
इक इक हरि कीनी ब्रज बनिता अरू सोहै मनी गनी ।
चढ़ि विमान सुर जुवति कहें परस्पर गिरवरधर पियूष धनी ।।
गोप वधू बालक मिलि गावत मध्य निरत करत बलि मोहन ।
"परमानन्ददास" को ठाकुर सब मिल गावत धन धन ।।[1]

राग मालव

रास बिलास गहे कर पल्लव इक इक भुजा ग्रीवा मेली।
दै दै गोपी बिच बिच माधौ निरतत संग सहेली ।।
टूट परि मोतिन की माला ढूंढ़त फिरत सकल गुवाली ।
सरद विमल नभ चन्द विराजत निरतत नन्द किसोरा ।
"परमानन्द प्रभु" बदन सुधानिधि गोपी नैन चकोरा ।।[2]

---

1. परमानन्द सागर - सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल -
पद. 225

2. परमानन्द सागर - सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल -
पद 228

अमर के दोनों पदों में भागवत की छाया है। दो गोपियों के बीच एक माधव का नृत्य करना, आकाश में शरद ऋतु का चाँद होना और एक एक के कंधे पर हाथ रखकर नाचना यह रास का सुंदर दृश्य है। गोप बालक सभी मिलकर गाते हैं, आकाश में सूरलोग विमान में रास देखने को आये हैं - यहमहारास का अद्भुत दृश्य है। परंतु इसके वर्णन में हृदय की पूर्ण प्रेरणा है। इसी प्रेरणा, अनन्य भक्ति और गहर भावना के कारण पद में मौलिकता का दर्शन होता है। किसी सखाने अपनी भक्ति को छोड़कर भागवत को अपने कीर्तनों में नहीं उतारा है। शब्द-सौंदर्य, भाव-सौंदर्य, शब्द-चित्र, कोमल भावों की अभिव्यक्ति आदि परमानन्ददासजी की अपनी कला है जो मौलिकता की छाप उत्पन्न करती है। यहाँ अर्थ और यश की भावना नहीं है। अपने आराध्य में जो स्वरूपासक्ति है, भावासक्ति है, तन्मयासक्ति है, इसी का प्रदर्शन है।

देखिए शब्द चित्र के साथ भाव एवं भक्ति की अभिव्यक्ति :-

राग सारंग

ब्रज बनिता मधि रसिक राधिका बनी सरद की राति हो ।
नितत ततथेई गिरधर नागर गौर स्याम अंग काँति हो ।।
इक इक गोपी बिच बिच माधो बनी अनूपम भाँति हो ।
जै जै सबद उचारत सुर मुनि बरसत कुसुम न अघाति हो ।।
निरखत क्यों ससि आय सीस पर क्यों हू न होत प्रभात हो ।
"परमानन्द" मिलै यहि औसर बनी है आज की बात हो ।।[1]

यहाँ श्रीकृष्ण व्यवस्थित रूपसे ताल और लय के साथ नृत्य करते हैं, इस का चित्र है। सूर - मुनि पुष्ट वृष्टि करते हैं और अपने आराध्य की "जय जय" पूकारते हैं। इस में भाव की तन्मयता और संगीत की सुधारूता - ताल और लय-बद्धता तथा प्राकृति वातावरण की शीतलता सुंदरता और स्वच्छता का दर्शन होता है। यही भक्ति की अनन्यता है।

---

1. परमानन्द सागर - सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल -

सं. 229

उस समय की रात्रि श्रीमद्भागवत के अनुसार ब्रम्हरात्रि थी जो बहुत ही बड़ी थी।[1]

बन्यौ ताल भरसक राधे सरद चाँदिनी राति ।
रथ टेकि ससि हर हर्यौ सिर पर होत नहीं परभाति ।

स्वयं कामदेव भी इसी दृश्य में आत्मविस्मृत हो जाता है।

राग सारंग

गोपाल लाल सौं नीकैं खेलि ।
बिकल भई संभार न तनकी सुन्दरि छूटे बार सकेलि ।।
टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत चुरी खिसत सिर फूल ।
चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल ।।
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोच्छब रास विलास ।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्न केलि "परमानन्ददास" ।।[2]

---

1. ब्रम्हरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिता: ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्य: स्वगृहान् भगवत्प्रिया: ।।
भागवत - 10.33.39

2. परमानन्द सागर - सं. डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल सं. 233
यहाँ -10.33 के 25-26 वें श्लोकों का भाव है।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि परमानन्ददासजी ने भागवत की छाया वाले शरद रास के पदों की रचना की है। उन्होंने सूर की तरह बसंतरास और शरदरास को मिला नहीं दिया है। तात्पर्य यह कि वे रास एवं अन्य प्रसंगों के वर्णन में आचार्य वल्लभ और भागवत पर आधारित हैं। संक्षेप में कहने का यह कि उनकी लीला भावना पूर्ण रूपसे आनंद की भावना है। तथा उसका उद्देश्य सुख देना मात्र है। उन्होंने अपनेलीला विषयक पदों में स्वाभाविक कल्पना और भक्ति का आश्रय लिया है। साथ ही अपने समकालीन सखाओं का भी अनुकरण किया है। सूर अपनी मानलीला के लिए, नन्ददास अपनी रासलीला के लिए तो परमानन्ददास अपनी बाललीला के लिए लाजवाब हैं।

## सूरदास

सूरदासजी श्रीमहाप्रभुजी के शिष्य थे और संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद उनको श्री गोवर्धन नाथजी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी गई थी। उनका कीर्तन का ओसरा उत्थापन था, परंतु अंधे होने के कारण वे दिनभर मंदिर में ही पड़े रहते थे। उनपर गुरूकृपा और आराध्य की अनुकम्पा थी इसलिए उनकी आंतरिक दिव्य दृष्टि खुल गई थी। इसीसे अपने आराध्य के श्रृंगार का दर्शन करते थे तथा लीलागान करते थे। उनके पदों का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे संस्कृत और साहित्य के अच्छे विद्वान थे। उनकी भाषा, शब्दरचना, शब्द चातुर्य, भाव व्यंजना को देखने सेस्पष्ट होता है कि वे ब्रजभाषा और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परंतु जब वे दीक्षित हुए तब श्री महाप्रभुजी ने उनको श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई थी और श्रीमद्भागवत पर भगवान की लीलागान करने का आदेश दिया था। दूसरी बात अन्य अष्टसखाओं की तरह सूरदासजी भी संप्रदाय के विद्वानों का उनको अधिक सत्संग हुआ था जिसके परिणाम स्वरूप वे संगीत और साहित्य में इतनी सुंदर रचना कर सके हैं। रामचन्द्र शुक्ल जीने अपने "भ्रमर गीत सार" की भूमिका में लिखा है कि अष्टसखाओं में सबसे ऊँची और सुरीली आवाज सूरदास की वीणा दी थी। तथा सूरदास ने ऐसे रागों का निर्माण किया है

जिनका नामकरण भी आज तक नहीं हुआ है। तात्पर्य यह कि उनके पदों में शुद्ध सुंदर ब्रजभाषा का दर्शन होता है। ऐसे भक्त कवि ने भागवत के आधार पर भगवान की लीला का गुणगान किया है। विशेष तौर पर दशमस्कंध को अधिक महत्व दिया है। सूरदासजी लीला संबंध में कृष्ण सखा तथा चंपकलता सखी अंतरंग अवस्था में हैं। ऐसे सूरदासजी ने रासपंचाध्यायी को ध्यान रखकर अपने कीर्तनों की रचना की और मानलीला का सुंदर गायन किया। उन्होंने रासपंचाध्यायी का प्रारंभ, श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपी-गीत, रास नृत्य तथा जलक्रीड़ा आदि विभाग में भागवत की रासपंचाध्यायी के आधार पर कीर्तनों की पदों की रचना की है।

भागवत में 29वें अध्याय से रासलीला का प्रारंभ होता है। शरद ऋतु की रात्रि के समय भगवानने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमाया के सहारे गोपियों को निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीड़ा करने का संकल्प किया। भगवान के संकल्प के साथ प्राची दिशा में सुंदर चन्द्र निकल आया और अपनी मुरली की तान छेड़ी।

भागवत की इस कथा का आधार लेकर सूरने जो रासपंचाध्यायी का सर्जन किया है, वह इस प्रकार है। एक बात स्पष्ट है। सूरदास के अध्ययन के विषय में अन्धकार है। फिर भी उन्होंने जो पद बनाये वह उनकी आंतरिक दैवी प्रेरणा के सहारे बनाये हैं। इसमें उनके आराध्य का अनुग्रह और गुरू के आशीर्वाद है। इसलिए भागवत के साथ साम्य होने पर सूर की मौलिक रचनाएँ हैं और उनमें उनकी मौलिकता का दर्शन होता है।

रासपंचाध्यायी का प्रारंभ

राग गुड मल्हार

सरद निसि देखि हरि हरष पायौ ।[1]
विपिन वृंदा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रूचि श्याम के मनहिं आयौ ।।
परम उज्ज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर,
मध्य फल तरूनि प्रति लटकि लागे ।।
तैसोई परम रमनीक जमुना - पुलिन ,
त्रिबिध बहै नवन आनंद जागे ।।

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन - सं. 1606

राधिका रमन-बन भवन सुख देखि कै,
अधर धरि बेनु सु ललित बजाई ।।
नाम लै लै सकल गोप कन्यानि के सबनि
कैं स्त्रवन वह धुनि सुनाई ।।
सुनत उपज्यौ मैन, परत काहुँ न चैन,
शब्द सुनि स्त्रवन भईं बिकल भारी ।।
सूर-प्रभु ध्यान धरि कै चलीं उठि सबै,
भजन-जन-नेह तजि घोष-नारी ।।

इस पद में शरद ऋतु की ऋतु,[1] सुंदर प्रकृति श्रीहरि ने देखी, उज्ज्वल चाँद और चाँदनी देखी, इसी से उन्होंने मुरली बजाई जिसको सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो गईं तथा स्थान छोड़कर मुरली की ध्वनि की ओर चल पड़ीं।

---

1. भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
- 10.29.1

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
- 10.29.2

राग कल्याण

सुनि कै कुंज कानन बैन ।
ब्रज-बधू सब बिसरि अंबर, चलीं गृह तजि चैन ।।
सब्द इहिं बिधि भयौ मोहन, सूझि और परै न ।
थकित जमुना भई इहिं बिधि मनहुँ जल कियौ सैन ।।
मगन मुनि जन भए इहिं बिधि, पूजियौ पद-रैन ।
सूर स्याम जु रसिक नागर, सुभट सुत उर दैन ।।[1]

इसी पद में भागवत की छाया है और प्रसंग के अनुसार वर्णन है।

राग गुड मल्हार

सुनत मुरली भवन डर न कीन्हौ ।
स्याम पै चित्त पहुँचाइ पहिले दियौ,
आपु उठि चली सुधि मदन दीन्हौ ।।
कहत मन-कामना आज पूरन करैं नंद-नंदन सबनि बन बुलाई।
जानि लायक भजीं, तरूनि सुत पति तजीं,
काहुँ नहिं लजीं अति प्रेम धाईं ।।
तज्यौ कुल-धर्म, गोधन, अपल-जन तजे,
पगीं रस कृष्न-बिनु कछु न भावै ।
सूर-प्रभु सौं प्रेम सत्य करि कै कियौ, मन गयौ
तहाँ, इनकौं बुलावै ।।[2]

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - नागरीप्रचारिणी सभा प्रकाशन - सं. 1609
2. सूरसागर - प्रथम खंड - नागरीप्रचारिणी सभा प्रकाशन - सं. 1612

इस पद में भागवत की भी छाया है।

दुहन्त्योऽभियुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।।
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पायवन्त्यः शिशून पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद् अश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ।।

भागवत 10.29.5-6

ऊपर जो श्लोक हैं उनकी छाया ऊपर जो पद दिये गये है उनमें है। छाया अनुवाद नहीं हैं, परंतु भागवत की कथा जो सुनी हो और आराध्य का जो अनुग्रहो तो आन्तरिक प्रेरणा होवे। यही प्रेरणा मौलिकता का प्रतीक है। सूर के पदों में भाव-व्यंजना, कोमल शब्दों की पदावली अर्थसंकेत उत्तम हैं। इनका दर्शन हमें ऊपर के पदों में देखने में आता है। भागवत की कुछ बात लेकर अपनी स्वाभाविक कल्पना से काम लिया है। यही कल्पना उनकी मौलिक्ता है।

राग सारंग

सुनौ सुक कह्यौ परीच्छित राउ ।
गोपिनि परम कंत हरि जान्यौ, लख्यौ न ब्रम्ह-प्रभाउ ।।
गुनमय ध्यान कीन्ह निरगुन-पद, पायौ तिनि किहिं भाइ ।
मेरैं जिय संदेह बड़ौ यह, मुनिवर देहु नसाइ ।।
सुक कह्यौ बैर भाव मन राखैं, मुक्त भयौ सिसुपाल।।
गोपी हरि की प्रिया मुक्ति लहैं, कह अचरज भूपाल ।।
काम, क्रोध, भय, नेह, सुहृदता, काहू बिधि करि कोइ।
धरै ध्यान हरि कौ जो दृढ़ करि, सुर सो हरि-सम होइ।।[1]

देखिए भागवत के साथ कितना साम्य है :-

<u>राजोवाच</u> :

कृष्णं विदु: परं कान्तं न तु ब्रम्हतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ।। २
श्रीशुक उवाच
उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्य: सिद्धिं यथा गत: ।
द्विषन्नपि हृषिकेशं किमुताधोक्षजप्रिया: ।। २

---

।. सूरसागर - प्रथम खंड - नागरी प्रचारीणि सभा प्रकाशन -
सं. 1626

२. पृष्ठ ९४ पर

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्या प्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।।[1]

परीक्षित राजा प्रश्न पूछते हैं कि गोपियाँ श्रीहरि को अपना प्रियतम ही मानती थीं, उनमें ब्रम्हभाव ही नहीं था। तो उन लोगों ने "निरगुन का ध्यान कैसे किया ? महात्मना शुकदेवजी ने कहा चेदिराज शिशुपाल भगवान के प्रति द्वेष भाव रखने पर भी प्राकृत शरीर को छोड़कर अप्राकृत शरीर से उनका पार्षद हो गया। गोपियाँ तो श्रीकृष्ण से प्रेम करती हैं और उनकी प्यारी हैं, अतः भगवान उनको प्राप्त हो जाय तो क्या आश्चर्य है ?

यही बात भागवत के श्लोक 12,13,14 में है जैसे कि सूरदासजी ने अनुवाद किया हो। परंतु यहाँ अनुवाद नहीं है। प्रसंग की सचाई, स्वाभाविक कल्पना और अनन्य भक्ति का प्रेम इसके कारण पद के वर्णन में छाया में यथार्थता आने पाई है। ऐसे तो अनेक पद हैं जिनमें थोड़ा-बहुत साम्य है। इन सबका कारण यही है - मौलिक प्रेरणा ।

---

1. श्रीमद्भागवत 10.29.12,13,14 श्लोक

श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना :-

भागवत के अनुसार जब गोपियों को श्रीकृष्ण जैसे प्रियतम मिलने के कारण अहं और मान हो जाता है तब उनके मान और अहं को दूर करने को भगवान अन्तर्धान हो जाते हैं। यही बात सूरदासजी अपने पदों में कहते हैं।

राग रामकली

गरब भयौ ब्रजनारि कौं, तबहीं हरि जाना।
राधा प्यारी संग लिये, भए अंतर्धाना ।।
गोपिनि हरि देख्यौ नहीं, तब सब अकुलाईं ।
चकित होइ पूछन लगीं, कहँ गए कन्हाईं ।।
कोउ मर्म जानैं नहीं, ब्याकुल सब बाला ।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैं, जित-तित ब्रज बाला ।।[1]

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।।

भागवत - 10.29.48

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - नागरीप्रचारीणि सभा प्रकाशन - सं. 1703

भागवत में भगवान कहते हैं कि गोपियों को अपने सुहाग का कुछ गर्व हो गया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब उनका गर्व शांत करने के लिए तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करने के लिए वहीं - उनके बीच में ही अंतर्धान हो गये। यही बात सूरदासजी अमर के पद में कहते हैं कि जब ब्रजनारियों को गर्व हुआ तब अपनी प्यारी राधा को संग लेकर भगवान अंतर्धान हो गये। तथा जब भगवान को गोपियों ने न देखा तब चकित होकर भगवान के संबंध में एक दूसरे से पूछने लगीं। व्याकुल होने लगीं, ढूँढ़ने लगीं परंतु मर्म न जान सकीं। सूरदास के पद और भागवत के श्लोक में कितना साम्य है। परंतु इसमें भी मौलिकता है। यह अनुवाद नहीं है। यह आंतरिक प्रेरणा है। आंतरिक चेतना की जागृति है जिसमें भक्ति की अटूट भावना है। जब वे सब मिलकर अपने प्रियतम को ढूँढ़ती हैं और मिलते नहीं है तो वे लता, वृक्ष, पशु, पक्षी से अपने प्रियतम के बारे में पूछती हैं :-

राग काफी

कोउ कहुँ देखे री नँदलाल । साँवरौं ढोटा नैन बिसाल ।।

मोर-मुकुट बनमाल रसाल । पीतांबर सोहै मनि-माल ।।

निसि बन गईं सबै ब्रज-बाल । अंतर्धान भए रचि ख्याल ।।

ढूम-ढूम ढूँ-ढ़त भईं बिहाल । सूर स्याम बिनु बिरह जँजाल ।।[1]

राग रामकली

कहि धौं री बन बेलि कहूँतैं, देखे हैं नँद-नंदन ।

बूझहु धौं मालती कहूँ तैं पाए हैं तन-चंदन ।।

कहि धौं कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल तमाल ।

कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुंदर नैन बिसाल ।।

कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कहु, कहि बदरी कर बीर ।

कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनश्याम सरीर ।

कहि धौं मृगी भया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल ।

सूरदास-प्रभु के तुम संगी, हैं कहँ परम कृपाल ।।[2]

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - ना.प्र.प्रकाशन - सं. 1707

2. सूरसागर - प्रथम खंड ना.प्र. प्रकाशन सं. 1709

देखिए भागवत में :-

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।

- 10.30.7

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।

- 10.30.8

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ।

रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ।।

- 10.30.6

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैः ।

तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।।

- 10.30.11

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा बनस्पतेः ।

- 10.30.13

इस प्रकार ऊपर के पदमें जो है वह भागवत की छाया है, जो ऊपर के संदर्भ श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है।

जब गोपियाँ हरि को खोजती हुई थक जाती हैं तब वे हरि चरित करने लगती हैं :-

राग बिहागरी

करति हैं हरि-चरित ब्रज-नारि ।
देखहीं अति बिकल राधा, यहै बुद्धि बिचारि ।।
इक भई गोपाल कौ बपु, इक भई बनवारि ।
इक भई गिरिधरन समरथ, इक भई दैत्यारि ।।
इक भई धेनु-बछरा, इक भई नँदलाल ।
इक भई जमला-उधारन, इक त्रिभंग रसाल ।।
इक भई छबि-रासि मोहन, कहति राधा नारि।
इक कहति उठि मिलहु भुज भरि, सूर-प्रभु की प्यारि।।[1]

---

1. सूरसागर प्रथम खंड - नागृ. स.प्रकाशन सं. 1339

ऊपर के पदमें जो भाव है वह भागवत के दशमस्कंध के 30वें अध्याय के ।। से 23 श्लोकों का भाव है। सूर भागवतानुसारी हैं, यह यहाँ स्पष्ट होता है। "गोपिका गीत" में जो भाव है, उसे सूर ने अनेक पदों में उतारा है। यह बात भी ऊपर के पदों से स्पष्ट हो जाती है।

सूर ने अपने गुरू का आदेश माना और भागवत का अनुसरण किया। यही हम यहाँ देख सकते हैं।

रासक्रीड़ा और जलक्रीड़ा

जब गोपियाँ भगवानमय बन जाती हैं अपने आपको भूल जाती हैं, उनकी लीलागान में व्यस्त हो जाती हैं, तब उनका अहं पिघल जाता है और भगवान उनके बीच प्रकट हो जाते हैं। इससे वे अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। उनको प्रसन्न करने के लिए भगवान महारास का आयोजन करते हैं।

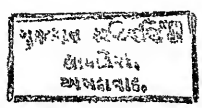

राग कान्हरौ

प्रगट भए नँदनंदन आइ ।

प्यारी निरखि बिरह अति ब्याकुल धर तैं लईं उठाइ ।।

उभय भुजा भरि अंकम दीन्हौं, राखी कंठ लगाइ ।

प्रानहु तैं प्यारी तुम मेरैं, यह कहि दुख बिसराइ ।।

हँसत भए अंतर हम तुम सौं, सहज खेल उपजाइ ।

धरनी मुरझि परीं तुम काहैं, कहाँ गईं चतुराइ ।।

राधा सकुचि रही मन जान्यौ, करयौ न कछू सुनाइ ।

सूरदास-प्रभु मिलि सुख दीन्यौ, दुख डारयौ बिसराइ ।।[1]

राग बिहागरौ

आजु निसि सोभित सरद सुहाई ।

सीतल मंद सुगंध पवन बहै, रोम-रोम सुखदाई ।।

जमुना, पुलिन पुनीत, परम रूचि, रचि मंडली बनाई ।

राधा बाम अंग पर कर धरि, मध्यहिं कुँवर कन्हाई ।।

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड ना. प्र. स. प्रकाशन - सं. 1746

कुंडल सँग ताटंक एक भए, जुगल-कपोलनि झाईं ।
एक उरग मानौ गिरि ऊपर, द्वै ससि उदै कराईं ।।
चारि चकोर परे मनु फंदा, चलत हैं चंचलताईं ।
उड़पति गति तजि रह्यौ निरखि लजि, सूरदास बलि जाईं ।।[1]

राग कल्यान

रच्यौ रास रंग स्याम सबहिन सुख दीन्हौ ।
मुरली-सुर करि प्रकास, खग-मृग सुनि रस-उदास,
जुवतिनि तजि गेह बास, बनहिं गवन कीन्हौ ।।
मोहे सुर-असुर-नाग, मुनिजन गन भए जाग,
सिव सारद नारदादि चकित भए ज्ञानी ।।
अमरनि सह अमर-नारि, आईं लोकनि बिसारि,
ओक ओक त्यागि, कहतिं धन्य-धन्य बानी ।।
थकित-गति भयौ समीर, चंद्रमा भयौ अधीर,
तारागन लज्जित भए, मारग नहिं पावैं ।

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - ना.प्र.स.प्रकाशन - सं. 1756

उलटि बहति जमुन-धान, बिपरित सबही बिचार,

सूरज-प्रभु संग-नारि, कौतुक उपजावैं ।।[1]

रास के ऊपर के पदों में सूरदासजी ने भागवत का अनुसरण किया है। केवल प्रसंग लेकर अपनी स्वाभाविक कल्पना और भक्ति के सहारे अपने संगीत में रासके अनेक पदों का निर्माण किया है। ऊपर दोनों के पदों में भागवत के दशमस्कंध के महारास के अध्याय का संपूर्ण भाव है। तात्पर्य यह है कि सूरदासजी ने रासपंचाध्यायी के अनेक पद बनाये उनके आधार रूप भागवत को रखा है। तभी तो दोनों में साम्य आता है। प्रधान कारणों में यह कि उनको श्रीमहाप्रभुजी ने दशमस्कंध की अनुक्रमणिका जो उन्होंने स्वयं बनाई थी, उनको सुनाई थी। श्री वल्लभाचार्य जी श्रीमद्भागवत को संप्रदाय में प्रधान स्थान देते थे और सूरदास अपने गुरू श्रीमहाप्रभु को श्रीकृष्णवतार समझते थे। इसलिए उनके आदेश को अपने जीवन का आदर्श समझते थे। वैसे ही उन्होंने श्रीमद्भागवत के अनेक प्रसंग पदों में उतारा है, फिर भी दशमस्कंध उनके जीवन का प्रधान आदर्श था।

---

1. सूरसागर - प्रथम खंड - ना.प्र.स.प्रकाशन - सं. 1772

दूसरी बात यह कि बहुत अंशों में भागवतानुसारी हैं, फिर भी स्वकीय अभिव्यक्ति में वे अत्यन्त मौलिक और कविजन सुलभ स्वातंत्र्य के पूरे-पूरे भोक्ता और नियोक्ता भी रहे हैं। उनके ऐसे कतिपय प्रसंगों पर व्यास समास पद्धति से विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। सूरदासजी ने भागवत का अनुसरण किया है इसका प्रमाण "सूरसागर" में ही मिलता है।

राजा परीक्षित और शुकदेव के संवाद और भागवत की बात कही है :-

जैसे शुक नृपको समुझायो, सूरदास त्यौंही कहि गायौ ।
कही जो व्यास सुकदेव भागवत में, कही अब सूर जन गादी।

अन्य स्कंधों में भागवत का उल्लेख इस प्रकार है :-

1. व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादश स्कंध बनाइ ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करिगाइ ।।

(पृ. स्कं. 225)

2. कहे कछुक गुरू कृपातैं, सुनि भागवतानुसार

॥द्वि. स्कं. 36॥

3. तिनहित जो-जो किए अवतार। कह्यो सूर भागवत अनुसार।

॥तृ. स्कं. 9॥

4. ताके भयो दत्त अवतार। सूरकहत भागवत अनुसार।

॥च. स्कं. 2॥

तात्पर्य यह कि सूरदासने 12 स्कंधों में इस प्रकार स्वीकार किया है कि उन्होंने भागवत का अनुसरण लीलागान करने में किया है। परंतु अपनी मौलिक्ता नहीं छोड़ी।

कृष्णदास

कृष्णदास श्रीमहाप्रभुजी के शिष्य थे और उनको श्रीनाथ जी के मंदिर की व्यवस्था सौंपी गई थी। इसलिए वे अधिकारी बने। दिनभर मंदिर की व्यवस्था के कारण अपने आराध्य के सामने आनेका समय ही न मिलता था। अतः वे शयन के समय ही अपने आराध्य के सामने बैठते, कीर्तन बनाते और गाते। उनको शयन का ओसरा था। ये रासलीला के गायक थे और लीलासंबंध में श्रीदामा सखा तथा ललित सखी थे। वे बचपन में ही मथुरा आये थे और महाप्रभुजी का शरण स्वीकार किया था। उनको अध्ययन कुछ भी नहीं था, परंतु संप्रदाय के विद्वानों के सत्संग से उनको अधिक ज्ञान प्राप्त हो चूका था। संगीत का ज्ञान भी उनको संप्रदाय के विद्वानों से ही प्राप्त हुआ था। वे संगीत की अच्छी जानकारी रखते थे। वे रासलीला के गायक थे। श्रीमद्भागवत का उन्होंने अध्ययन नहीं किया था किंतु उनको भी दशमस्कंध की विषयानुक्रमणिका सुनने आइ हो इससे भागवत की छाया उनके गीतों देखी जाती है।

उन्होंने "रासपंचाध्यायी" के पाँचों अध्यायों की अलग अलग कथा नहीं ली। परंतु अपनी कल्पना, भक्ति तथा संगीत के त्रिवेणी संगम से सुंदर कीर्तनों की रचना की है।

राग श्री

मधुर-मधुर मुरलिका स्त्रवन सुनत ही घर-घर

तें ब्रजनारि धसीं ।

रह्यौ न परत नंद-नंदन बिनु मूरति मन में आइ बसी।।

बढ्यौ अनंग अंग-अंग ब्याकुल लोक-लाज उरतें जु खसी।

स्त्रुति-मरजाद उलंघि चलीं तिय हठि धाईं सब ऐकससी।।

प्रेम बढ्यौ परपंच बिसारयौ मिलन काज कटि पेंट कसी।

कहि "कृष्णदास" प्रीति के कारन बेगि मिले-धर सौं बिलसी।।[1]

इस पद में भागवत के 29वें अध्याय के 4,5,6 श्लोक का भाव आ जाता है। भगवान मुरली की तान छेड़ते हैं और घर-घर से गोपियाँ निकल पड़ती हैं।

राग गूजरी

गोविंद करत मोहन गान ।

सप्त स्वर गति-भेद मिलवत बेनु स्त्रुति बँधान ।।

---

1. कृष्णदास पद संग्रह - सं. 657

तरनिजा-कर लहरि बिरचित केलि पुलिन विधान।

सरद रजनी विमल उडुपति, मलय पवन सुठान ।।

राग गूजरी समुद्र तांडब लास्य कला-निधान ।

ब्रजवधू-संग मुदित नाचत, लेत अबघर तान ।।

बंसीकृत नग सिद्ध सुरगन थकित व्योम-विमान ।

"कृष्णदास" बिलास रस गिरिधरन सब गुन जान ।।[1]

इस पद पर भागवत के 29वें अध्याय के श्लोक 1, 2 और 3 की छाया है।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं ।

---

1. कृष्णदास पद संग्रह - सं. 633

यहाँ भागवत का प्रभाव है, परंतु कृष्णदास की मौलिकता का स्पष्ट दर्शन होता है। यही उनकी मूल आध्यात्मिक प्रेरणा है। संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। ताल-लय और आरोह - अवरोह का पूरा ध्यान रखते थे। गूजरी राग में लास्य का होना और सभी का नाचना -सूरगन का आकाश में से देखना - यह सारा दृश्य सुंदर कला का परिचायक है। इसमें भी श्रीकृष्ण का गान प्रसंग का महत्त्वपूर्ण अंग है।

राग कानरो

एहो हरि रास रच्यौ नाचत मिलि वृजललना ।
उघटत सब्द गिड गिड ताता ता थेईं थेईं
मृदंग बजावति गावति तान गोपांगना ।।
वृंदाबन बंसीबट के तट रंग मच्यौ,
मुरली की ताननि मधि लेत हैं अनंगना ।
"कृष्णदास" प्रभु प्यारी, रीझि भरैं अँकवारी
जै जै जै जै जै जै जदुनंदना ।।[1]

इस पद में नृत्य की गति और संगीतात्मकता का दर्शन होता है। एक एक ताल और लय तथा नृत्य की गति का वर्णन किया है। साथ में मुरली की तान संगीत का काम करती है। कितना सुंदर शब्द चित्र है जिसमें गति है और जीवन भी। यही कृष्णदास की कला है।

---

1. कृष्णदास पद संग्रह - सं. 629

राग कानरो

जीत्यौ माई । मदन रास-मंडल हरि ।
जो न जीत्यौ सतमख पसुपति अज,
जोग समाधि नेम तप ब्रज धरि ।।

करज-परस नीबो-बँद मोचन,
कुच जुग सरस आलिंगन बाहुबल ।
"कृष्णदास" प्रभु सबबिध समरथ,
गोवर्द्धनधर रसिक नट नवल ।।[1]

यहाँ श्रीमद्भागवत की छाया है। "स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो"[2]

यह भाव अमर के पद की अंतिम पंक्तियों में है। अतः अमुक हद तक भागवतानुसारी हैं। पद में जो भाव है वह "रासपंचाध्यायी" का उद्देश्य है। मदन दर्प दलन का काम कृष्ण ने किया - यही भाव है।

---

1. कृष्णदास पद संग्रह - सं. 638
2. 10.33.8 - भागवत

राग रवर

खेलत रास रसिक नँदलाला ।

जमुना-पुलिन सरद निसि सोभित रचि

मंडल ठाढी ब्रजवाला ।।

तत्ता थेई तत्ता थेई सब्द उघटत है बाजत झाँझ

पखावज ताला ।

जम्यौ सरस खट राग सप्त स्वर कूजत

कोमल बेनु रसाला ।।

सन्मुख लेत हैं उरप तिरप दोऊ, 3

राधा रसिकिनी मदनगोपाला।

मानौं जलद दामिनी रसभरी कनक-लता

मानौं स्याम तमाला ।।

सुरपुर-नारी निहारि परम रस अरू रतिपति

मन्मथ बेहाला ।

थकित चंद गति मंद भयौ अति चूके

मुनि ध्यान धरत बहुकाला ।।

परमविलास रच्यौ नटनागर बिलुलित

उरसि मनोहर माला ।।

"कृष्णदास" लाल गिरिधर-गति पावत

माँहिने स्वामि मराला ।।

इस रास को खेलते नंदलाल का चित्र खींचा गया है।
सुंदर प्रकृति का वातावरण है, यमुना का किनारा है, विविध वाद्ययंत्र बजते हैं, राधा अन्य गोपियाँ तथा कृष्ण नृत्य करते हैं, सुर-अंगनाएँ आकाश में से इस महारास का दर्शन करती हैं। यह शब्द-चित्र सुंदर है और उसमें गति है। नृत्य में गति है। यही इसमें स्वाभाविकता है। भक्ति की स्वाभाविक कल्पना, अनन्य भक्ति और आंतरिक प्रेरणा इसकी मौलिकता के प्रमाण हैं। कृष्णदासने अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए "अलंकारों का उपयोग किया है।

कृष्णदास की मौलिकता का दर्शन उनकी संगीतात्मकता में होता है। यही उनकी सूझ है, भक्ति है, ज्ञान है और कला है।

राग मालव गौड

बाजत मृदंग उघटित धुंग तक्कझं तक्कझं
धुमकिटता धुमकिट धुमकिट धिलांग तक ।
द्रगदां द्रगदां धिन्न दाना दनन
रटत झौंत झौं झौंत तक ।।
गति वादर गरज, घन दामिनी लरज,
आलाप लेत धरज होत अनुपम तरज ।
"कृष्णदास" प्रभु पास पूरन भई आस, नृत्य करत रस-बिलास
थौंदिग थौंदिग तक धुंग तक धुंग तक ।।

---

1. कृष्णदास पद संग्रह - सं. 652

प्रस्तुत पद में वाद्ययंत्र की ध्वनि का वर्णन किया गया है। ध्वनि में गति है, स्वाभाविक्ता है और वास्तविक्ता है। भगवान नृत्य करते हैं और इसी प्रकार सभी आनंद करते हैं। यहाँ कृष्णदासजी की कला का दर्शन वाद्ययंत्र की वास्तविक ध्वनि के उत्पादन के वर्णन में है। यह उनकी आंतरिक प्रेरणा, संगीत और वाद्ययंत्रों का ज्ञान तथा अनन्य भक्ति का परिणाम है। यही उनकी मौलिकता है।

तात्पर्य यह कि कृष्णदास अष्टसखाओं में से एक थे, जिन्होंने भागवत की रासपंचाध्यायी का अनुसरण केवल प्रसंग के लिए कर, पदरचना में अपनी आंतरिक प्रेरणा और भक्ति का उपयोग किया है। दिनभर के परिश्रम के बाद शयन के समय अपने आराध्य के सामने बैठकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करते थे। उनके पदों में अनुवाद नहीं है, क्योंकि अभ्यास तो कहीं किया नहीं था। फिर भी उन्होंने अपनी मौलिकता को नहीं छोड़ा। अष्टसखाओं की भक्ति ऐसी उत्कृष्ट प्रकार की थी, स्वयं भगवान का साक्षात्कार उन लोगों को होता था और इसीकारण से वे अपनी गहरी भावना और आंतरिक प्रेरणा के कारण अनेक मौलिक पदों की रचना करते थे। उनके पदों में वाद्ययंत्रों की ध्वनि, आलाप नृत्य और संगीतात्मक कला का दर्शन होता है। यही उनकी कला का परिचायक है।

## नंददास

नंददासजी श्री विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे। जब तक उनका ब्रम्हसंबंध नहीं हुआ था, तब तक वे मर्यादा मार्गीय भक्त थे। इसीकारण से उन्होंने "रासपंचाध्यायी" में श्री शुकदेवजी की वंदना की है।[1] परंतु जब उनको पुष्टिलीला का संबंध हुआ तब वे श्री गुसाईंजी की शरण में आये और बादमें पुष्टिलीला पद का वर्णन किया। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उनका हुआ एक दिन कि तुलसीदास ने रामायण किया, मैं भी श्रीमद्भागवत करूँ।" जब यह बात ब्राम्हणों ने सूनी तो श्री विठ्ठलनाथजी से ब्राम्हणों ने प्रार्थना की कि यदि नंददास जी भागवत करेंगे तो हमारी आजीविका नष्ट हो जायगी। तब श्रीगुसाईंजी महाराज ने नंददास को आज्ञा दी कि ब्राम्हण को क्लेश होवे ऐसा मत करो। तुम भगवान की लीला का गान करो। तब उन्होंने ऐसा किया।[2] ऐसे नंददासजी अच्छे विद्वान थे। उन्होंने भगवान की लीला का गान किया। श्रीमद्भागवतकार ने गोपियों के नैसर्गिक प्रेम, कृष्ण की लीला, रास और मुरली का वर्णन किया है। इसी प्रकार नंददासजी ने भागवतकार से बढ़कर गोपी के प्रेम≡ कृष्णकी लीला, रास और मुरली का वर्णन किया है। "लीला" शब्द का

---

1. 252 वैष्णव की वार्ता में नंददास की वार्ता।
2. 252 वैष्णव की वार्ता में नंददास की वार्ता।

अर्थ क्रीड़ा, विहार अथवा कौतुक है, परंतु श्री महाप्रभुजी ने इसका एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया है। अणुभाष्य में उन्होंने लीला संबंध में लिखा है कि लीला का उद्देश्य लीला है, जो भगवान अपने भक्तों के अर्थ अवतार लेकर स्वाभाविक ही करते हैं। कोई और प्रयोजन नहीं है। सर्वशक्तिमान होने के कारण ईश्वर की लीला बंधन में नहीं डाल सकती। यह लीला कैवल्य है। यद्यपि ईश्वर लीला में व्यस्त हैं, तथापि उसके संकीर्तन से अन्य प्राणियों को मोक्ष मिल सकती है। यह लीला स्वयं पूर्ण है।[1] नंददास ने "रासपंचाध्यायी" और "भँवरगीत" में लीला का प्रयोग इसी भाव से किया है। भगवान की लीला को प्रभाव सर्वत्र है।

हरि-लीला-इस-मत्त मुदित नित विचरति जग में ।
अद्भूत-गति कतहूँ न अटक हवै निसरति मग में ।।[2]

---

1. न हि लीलायां किंचित् प्रयोजनमस्ति। लीलाया स्व प्रयोजनत्वात्। ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या। सा लीला कैवल्यं मोक्षः। तस्य लीलात्वेप्यन्यस्य तत्कीर्तने मोक्ष इत्यर्थः। लीलैव केवलेति वा । आणुभाष्य - श्रीमहाप्रभुजी।
2. रासपंचाध्यायी अध्याय - 1-2

भगवान श्रीकृष्ण षोड्शकलापूर्ण परब्रम्ह माने गये हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण में सभी रसों की अभिव्यक्ति करके उसको "रासलीला" के रूप में प्रकट किया गया है। श्रीधर स्वामी ने "रसानां समूहो रास:" कहकर उपर्युक्त भाव प्रदर्शित किया है। भगवान ने अनेक गोपियों और राधा के साथ रास का आयोजन यमुना किनारे किया। श्री वल्लभ ने "सुबोधिनी" में बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रास:।। कहकर रास संबंधी अपना मत प्रदर्शित किया है।

तात्पर्य यह कि रसो वै स: में रास की भावना निहित है। महाकवि नंददास ने "रासपंचाध्यायी" में श्रीमद्भागवत का अनुवाद जैसा तो नहीं, महदअंश पर अनुसरण किया है। उन्होंने भागवत के पाँचों अध्यायों को अपने पाँचों अध्यायों में उतारना चाहा है, प्रसंग को लेकर, भाव को लेकर और भक्ति के साथ।

नंददास ने "रासपंचाध्यायी" के प्रथम अध्याय में प्रारंभ में महात्मा शुकदेवजी की वंदना की हैं और बादमें भगवान की लीला का प्रभाव जो जगमें उसे बताने का प्रयत्न किया है। साथ श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन किया है। ऐसे कृष्ण जब आँखों से दूर हो जाय तो संसार में अंधकार फैल जाय ऐसी बात कहते हैं। भागवत के विषय में कहते हैं :-

श्री भागवत सुभ नाम, परम-अभिराम अमित-गति ।
निगम-सार, सुक-सार, बिना-गुरू-कृपा अगम अति ।।[1]

उसमें भी ...

ताहू मैं पुनि अति-रहस्य यह पंचध्याई ।
तनि मैं जैसें पंच-प्रान, अस सुक मुनि गाई ।।

तथा उसे भी ...

परम-रसिक इक मित्र, मोहि तिन आग्या दीनी ।
ताही तैं यह कथा, जथा-मति भाषा कीनी ।।[2]

तात्पर्य यह कि किसी चित्र की आज्ञा से इस "रासपंचाध्यायी" का निर्माण हुआ है।

प्रथम अध्याय में वृन्दावन वर्णन करते हैं जो श्रीकृष्ण की लीला का धाम है। बाद में श्रीकृष्ण-स्वरूप-वर्णन करते हैं। अपने कृष्ण को परब्रम्ह का स्वरूप ही समझते हैं।

---

1. रासपंचाध्यायी - अध्याय 1 - 18
2. रासपंचाध्यायी - अध्याय 1 - 19-20

मोहन अद्भूत-रूप कहि न आवै छबि ताकी ।
अखिल-अंड-व्यापी जु ब्रम्ह, आभा कछु जाकी ।।
परमातम, परब्रम्ह, सबन के अंतरजामी ।
नाराइन-भगवान, धरम करि सब के स्वामी ।।[1]

बादमें सरद-रजनी का वर्णन करते हैं और बाद में चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं।

ताही छिन उडुराज उदित, रस-रास-सहारक ।
कुंकम-मंडित प्रिया-बदन, जनु नागर-नायक ।।

रासपंचाध्यायी अ.1.5।

तदोडुराजः ककुमः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।।

10.29.2. - भागवत

ऊपर साम्य होते हुए भी कितनी भिन्नता है। यही भक्त की आंतरिक प्रेरणा और ज्ञान शक्ति है जिसमें उनकी मौलिक्ता का दर्शन होता है।

---

1. "रासपंचाध्यायी" अध्याय 1 - 41-42

मुरली महिमा के संबंध में नंददासजी लिख-ते हैं :-

तब लीनीं कर-कमल, जोगमाया सी मुरली ।
अघटित-घटना चतुर, बहुरि अधरन-रस-जुरली ।।
जाकी धुनि तैं अगम, निगम, प्रगटे बड़-नागर ।
नाँद ब्रम्ह की जननि मोंहनी सब-सुख-सागर ।।[1]

यहाँ मुरली के संबंध में नंददासजी भागवत का अनुसरण करते हैं। वह जोगमाया सी है और अधर रसका पान करनेवाली है तथा नाँद ब्रम्ह की जननी है। उसका असर इतना है कि सभी को सुख देनेवाली है। ऐसी है मुरली जो सभी को मुग्ध कर देती है।

राजा परीक्षित प्रश्न पूछते हैं और शुकदेवजी उत्तर देते हैं, उसमें भी भागवत की शुद्ध छाया है।

भगवान की मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियाँ आईं और भगवान के दर्शन करने के बाद भगवानने जो कहा उसका उत्तर देती है कि :

---

1. रासपंचाध्यायी अध्याय 1 - मुरली-महिमा - 55-56

अहो मोहन । अहो प्राननाथ ।। सुन्दर-सुखदाइक.।।।
क्रूर-बचन जिनि कहौ, नाहिं ए तुम्हरे लाइक ।।

धरम, नेम, जप. पि. ब्रत, संजम, फलहिं बतावै ।
यह कहुँ नाहिं न सुनीं, जु फल फिरि धरम सिखावै ।।

औरू तिहारो रूप, धरम के धरम हिं मोहै ।
घर में को तिय भरमें, धरमें या आगें कोहै ।।[1]

यहाँ गोपियाँ अपनी भावना को प्रदर्शित करती हुई अपनी व्यथा और इच्छा को व्यक्त करती हैं। भागवत का अनुसरण है, परंतु कम, परंतु नंददास की सजीव कल्पना का प्राधान्य यहाँ है और अपनी भक्ति थी।

गोपियाँ और भी कहती हैं :-

जो न देहु अधरामृत, तौ सुनि सुन्दरि-हरि ।
करि हैं यह तन भस्म, बिरह-पावक में परि-परि ।।[2]

---

1. रासपंचाध्यायी अध्याय । - गोपीकथन 97,99,100
2. रासपंचाध्यायी अध्याय । - 107

देखिये इसके पर भागवत की कितनी छाया है :-

सिंयांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्त देहा
ध्यानेन याम पादयोः पदवीं सखे ते ।।[1]

दोनों भाव का अत्यधिक साम्य है। नंददास ने अपने भाव के साथ भागवतकार की भावना को मिला दिया है। फिर भी कवि की मौलिकता का स्पष्ट दर्शन होता है। कवि की विदग्धता और कला का दर्शन होता है।

भगवान जब अन्तर्धान हो जाते हैं तब गोपियों की दशा का चित्रण नंददास ने कलात्मक एवं भावात्मक दृष्टि से किया है।

यहाँ से विप्रलंभ का प्रारंभ होता है।

हे मालति । हे जाति-जूथि के ।। सुनि हित दै-चित ।
मान-हरन, मन-हरन, लाल-गिरिधरन लखे इत ।।[2]

---

1. भागवत - 10.29.35
2. रासपंचाध्यायी - अध्याय द्वितीय - 6

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूनिके ।
प्रीति वो जनयन् यातः कर स्पर्शेन माधवः ।।[1]

इस प्रकार साम्य है तो नंददास की कल्पना में सुंदर काव्यत्व है। ये सारी बातें आंतरिक प्रेरणा के कारण हैं। यही उनकी मौलिकता है। इसके बाद जब अपने प्रियतम को ढूँढ़ते थक जाती हैं तो स्वयं श्रीकृष्णमय बन जाती हैं। उनकी लीला स्वयं करती हैं। इसका वर्णन अध्याय दूसरे में आता है।

तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ उनका गुणगान करती हैं और अपने प्यारे को हरघड़ी याद करती हैं। भागवत का यह गोपीगीत है। यहाँ उनका अहं पिघल जाता है और इससे चतुर्थ अध्याय में भगवान स्वयं प्रकट होते हैं।

पीत-बसन-वनमाल धरैं, लसैं मंजुल-मुरली हथ ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ।।

---

1. भागवत - 10.30.8

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बर धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।।

पीतांबर धारण किए हुए, बनमाला पहने हुए, मुरली हाथ में लिए हुए भगवान मंद-मंद मुस्कन के साथ प्रकट हुए। इस समय उनका रूप सबके मनको मथनेवाले कामदेव के मनको भी मथनेवाला था। यही भाग भागवत के श्लोक में है। नंददास ने साम्य रखते हुए अपनी भावव्यंजना को नहीं छोड़ा। ऐसे तो अनेक छंद हैं नंददास के जिनमें भागवत को साम्य है। परंतु नंददास जी के हृदय में अपने आराध्य के प्रति जो शुद्ध सुंदर भावना है, उसके परिणाम स्वरूप ऐसी मौलिक कविता का जन्म होता है।

देखिए गोपीप्रश्न :-

इक भज ते कौं भजै, एक बिनु-भजते भजहीं ।
कहौ कृष्ण । वे कौंन आहिं, जो दोऊन तज हीं ।।[1]

भजतोऽनुभजन्त्येक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ।।[2]

---

1. रासपंचाध्यायी - अध्याय तृतीय - 3
2. भागवत - 10.32.16

देखिए दोनों में कितना साम्य है। फिर भी भाव में अंतर भी उतना ही है।

और भी ...

तुम जु करी सो कोउ न करै, सुनि नबल-किसोरी ।।
लोक-बेद की सुदृढ़-सृंखला, तृन-सम तोरी ।।[1]

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेह श्रृंखलाः संवृश्च तद् वः प्रतियातु साधुना ।।[2]

यहाँ भगवान के भाव को लेकर नंददास ने भागवत से कितना साम्य रखा है। फिर भी अपनी भाषा में अपनी आंतरिक प्रेरणा के कारण सुंदर छंद की रचना की है।

पाँचवे अध्याय में महारास और फलस्तुति का वर्णन है। भागवत का यहाँ भी अनुसरण किया है। फिर भी नंददास ने अपनी विद्वत्ता, ज्ञान, समझ, काव्यत्व भक्ति और सजीव कल्पना के द्वारा सुंदर छन्दों की रचना की है जिनमें उनकी अनन्य भक्ति और मौलिकता का दर्शन होता है।

---

1. रासपंचाध्यायी अध्यायी - चतुर्थ 27
2. भागवत - 10.32.22

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नंददासजी भाषा और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे तथा श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अपने काव्य में उन्होंने सुंदर वर्णन किया है और अपनी मौलिकता के साथ अपनी काव्यकला का भी परिचय दिया है।

## चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास के पुत्र थे और श्रीकृष्ण के परम भक्त। श्री विठ्ठलनाथजी ने उन्हें "अष्टसखा" में स्थान दिया और इससे उनकी भावना और भी बढ़ गई। ये गोवर्धन लीला के गायक थे तथा अंतरंग संबंध में विशालु सखा तथा विमलासखी ॥रंगदेवी॥ थे। तथा भोग के ओसरे पर अपनी कीर्तन सेवा करते थे। उनका ज्यादा ध्यान भगवान की लीला गान में था। अतः "रास" के उनके बहुत ही कम पद प्राप्त हैं। "चतुर्भुजदास" - पद संग्रह में केवल छे पद रास के हैं। उनमें से ये दो पद ऐसे हैं जिनमें उनकी भक्ति भावना और रास का दर्शन होता है।

### राग मालवगौरा

मदन गोपाल रास-मंडल में मालव राग रस भर्यो गावै ।
औधर तान बंधान सप्त सुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै ।।
नितंत सुलप लेत नूपुर सच बहु विधि हस्तक भेद दिखावै ।
उघटत सब्द तत्त थेई तत्त थेई जुवति-वृंद मन मोद बढावै ।।
थक्यो चंद मोहे खग मृग गन प्रति छिनु अभित आन गति लावै।
"चतुर्भुज" प्रभु गिरिधर नट नागर सुर नर मुनि गति मति बिसरावै ।।[1]

---

1. चतुर्भुजदास - पद संग्रह - सं. 34

राग केदारो

अद्भुत नट-भेषु धरें जमुना तट स्याम सुंदर
गुन निधान गिरिवरधर रास-रंगु नाचें ।
जुवति-जूथ संग मिलि गावत केदार रागु
अधर बेनु मधुर-मधुर सप्त सुरनि साचें ।।
उरप-तिरप लाग-डाट तत-तत-तत-थेई-थेई-थेई
उघटत सब्दावलि गति भेद कोउ न बाचें ।
"चतुभुज" प्रभु बन बिलास, मोहे सब सुर अकास
निरखि थक्यो चंद-रथ हि पच्छिम नहिं खाचें ।।[1]

प्रस्तुत दोनों पदों में "रास" भावना का दर्शन होता है। श्रीकृष्ण स्वयं मालव राग में गान करते हैं तथा मुरली भी बजाते हैं। इसी को सुनकर सभी नृत्य करते हैं। किस प्रकार नृत्य करते हैं इसका भी ध्वनि है। भगवान "रास" के द्वारा सुर-मुनि गति-मति को भुला देते हैं। "रास" के पदमें श्रीमद्भागवत की छाया मात्र है प्रसंग की। शेष भक्त की कल्पना, भक्ति, आंतरिक प्रेरणा, संगीत की भावना और छन्द रचना की कला का परिणाम है। पद में कृष्णदास की तरह गति है और जीवन है। यही उनकी मौलिकता है। अष्टसखाओं में मौलिक्ता अपनी स्वतंत्र भावना है - कला है - भक्ति है।

---

1. चतुर्भुजदास - पद संग्रह - सं. 36

## गोविन्दस्वामी

गोविन्दस्वामी श्री नाथजी के और श्री विठ्ठलनाथजी के परम कृपा पात्र भक्त थे और हर समय उनके सान्निध्य में ही रहते थे। उनका कीर्तन का ओसरा "ग्वाल" था और वे आँख-मिचौनी लीला और हिंडोला लीला के गायक थे। अंतरंग संबंध में वे श्रीदामा के रूप में स्वामिनीजी के भ्राता और भगवान के सखा जो उनके साथ दिनमें खेलते थे तथा रात्रिमें भामा सखी रूपमें थे। श्री ठाकुरजी इन्हें मालारूप प्ररमप्रिय मानते थे। इनकी श्रृंगारासक्ति टिपारा में है। भगवान का गुणगान गाते गाते वे प्रेमाश्रुपूर्ण गद्‌गद्‌ हो जाते और "ग्वाल" के सिवा अन्य ओसरे के समय पर यथावकाश कीर्तन बनाते और गाते।[1] वे राधा-कृष्ण को अपना आराध्य मानते थे और श्रीकृष्ण को परमब्रम्ह के अवतार मानते हैं। पुष्टिमार्ग में पुष्टि अनुग्रह द्वारा ही भगवत्‌ प्राप्ति होती है और नवधा भक्ति का उसमें महत्वपूर्ण स्थान है। वे श्री नाथजी के सखा-सहचर हैं तथा उनके साथ खेलते भी हैं।[2] वें श्री विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे अत: श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रणित शुद्धाद्वैत दर्शन उनका दर्शन है। वे भक्ति के सामने ज्ञान और कर्म को गौण मानते हैं, साथ ही भक्ति दुष्कर भी है, ऐसा कहते हैं। प्रियतम की प्राप्ति प्रेम के द्वाराही हो सकती है।

---

1. श्रीहरिरायजी "रसिक" कृत पद - "सूरदास सिर पात्र बिराजे"
2. "गोविंदस्वामी" पद संग्रह - पृ. ।। और उस पर भावार्थ।

प्रीतम प्रीति ही तें पैये ।
जदपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनि रिझैये ।।[1]
सत कुल जनम करम सुभ लच्छन वेद पुरान पठैये ।
"गोविंद" प्रभु बिना स्नेह सुधा लौं रसना कहा नचैये ।।

गुरू की कृपा से भी भगवद् भक्ति-पुष्टि मिल सकती है ऐसा उनका मानना है।

मेरे विठ्ठल से प्रभु समान और न दूजो कोइ ।।[2]

उन्होंने अपने कृष्ण को छोड़कर बैकुंठ की कभी कामना नहीं की। उनका काव्य शरीर और आत्मा के समान संबंधित है। वे वाणी और अर्थ के रूप में पूर्णाभि व्यक्ति के साथ ही उत्तम काव्य की सृष्टि करते हैं। इनका वर्ण्य विषय स्वयं उनके आराध्य श्रीकृष्ण हैं और नित्य सेवा के उपरांत वर्षोत्सव के पद भी गाये हैं। वे अपने कीर्तनों की रचना में सूर तथा परमानन्ददास से प्रभावित हैं। वे भावविभोर होकर अपने आराध्य के सामने गान करते हैं अनेक पद बनाते हैं। उनकी ये रचनाएँ मौलिक हैं जिनके मूलमें केवल अनन्य भक्ति है।

---

1. गोविंदस्वामी पद संग्रह - पद सं. 343
2. गोविंदस्वामी पद संग्रह - पद सं. 99

उन्होंने भी रास के पदों का गान किया हैं, दशमस्कंध के अध्याय के अनुसार नहीं, परंतु जिस प्रकार अपने मनमें और कल्पना में आया उस ढंग से गान किया है, फिर भी प्रसंग में तो भागवत का अनुसरण करते हैं।

राग कान्हरो

नूतन रास रंगा रसिकरसभरे हो।[1]
सुलप संच गति लेत ग्रग्र तत तत थेईथेई बाजत मृदंगा।।
ताल तंत्र किन्नरी कातर भेद तेसीए उठत धुनि सरस उपंगा।
"गोविंद" प्रभु के जुरस माति हैं जुवती जूथ सिर ग्रथित
मोतिन मंगा ।।

राग केदारो

नाचत गोपाल-संग गोप कुँवरि अति सुंधंग -
तथेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे ।
संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बँधान -
धिधि कटि धिधि कटि मृदंग मधुर मधुर बाजे ।।
मुरली रटनि रस को रटन मटकनि कटक मुकुट -
चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे ।
"गोविंद" प्रभु पिय की छबि देखत रस बस मंत्र मगन -
जमुना तट काछे नट अद्भुत छबि छाजे ।।[2]

---

1. गोविंदस्वामी पद संग्रह - पद सं. 56
2. गोविंदस्वामी पद संग्रह - पद सं. 62

राग केदारो

नृत्तत गोपाल संग राधिका बनी ।
कंचन तन नील बसन स्याम कंचुकी विचित्र -
कंकन कर कटि सुदेस रूनित किंकिनी ।।
थेईं थेईं थेईं बदत मान उरपि तिरपि करत गान -
सरस तान राग रागिनी ।
ताल झाँझ जति मृदंग मिलवत बीना उपंग -
बाजत पग नू पुर कल धुनी ।।
राका निसि सरद चंद प्रगट अँग अँग अनंग -
रह्यो रास रंग सरस तट कलिंदनी ।
रीझे गिरिधर सुजान रसिकराइ गुन निधान -
साधु साधु कहत अंक भरत वृंदनी ।।
दंपति उरप तिरप रास करत केलि रति बिलास -
निरखे प्रेम गुन निवास कल जामनी ।
लीला रस सुख निहारि तन मन धन प्रान वारि -
"गोविंद" प्रभु अखिल केलि जगत पावनी ।।[1]

---

1. गोविन्दस्वामी पद संग्रह -
पद सं. 65

गोविन्दस्वामी के रासके पद कुल 14 हैं उनके पद संग्रह में उनमें से तीन पसंद किए हैं जिनमें भागवत के प्रसंग की छाया है।

प्रथम पद में भगवान स्वयं मृदंग के ध्वनि के साथ नृत्य करते हैं, उनके साथ गोपियाँ भी हैं जो नृत्य करती हैं तथा ध्वनि के साथ हाथ और पैर की गति तीव्र बनती है। यहाँ उन्होंने गत्यात्मक एवं संगीतात्मक भावसे युक्त पद की रचना की है जिसमें उनकी अनन्य भक्ति का दर्शन होता है।

दूसरे पद में यमुना के किनारे प्रभु मुरली की ध्वनि के साथ और अनेक गोपियों से बने मंडल में गान और वाद्ययंत्र की ध्वनि के साथ नृत्य करते हैं। साथमें राधा भी है। इसमें भी संगीतात्मकता, गति और यथार्थता का दर्शन होता है। भक्त भगवान की रूपासक्ति में मस्त है, इसका दर्शन होता है।

तीसरे पद में श्रीराधा जिसने संपूर्ण श्रृंगार धारण किया है, ऐसी वह श्रीकृष्ण के साथ मृदंग की ध्वनि के साथ पैर को गति देती है तथा अभिनय करती है। झाँझ और मृदंग के साथ नूपुर की सुंदर मधुर ध्वनि सुनाई देती है। राधाकृष्ण और कृष्ण तथा अन्य गोपियाँ रास करती हैं। भगवान के ऐसे सौंदर्य पर गोविन्दस्वामी अपने आपके निछावर कर देते हैं।

प्रस्तुत तीनों पदों में गोविन्दस्वामी की काव्य कला का परिचय होता है। वे प्रसंग को लेते हैं, साथ में कल्पना का सहयोग भी छोड़ते नहीं है। उनके पदों की लीला भागवत पर आधारित है। भगवान का नैकट्य होने के कारण भाव की गहराई, अनन्य भक्ति, आंतरिक प्रेरणा तथा आत्मनिवेदन तथा रूपसक्ति उनके पदों में देखी जाती है। साधना क्षेत्र, साध्यविषय, उपासन-प्रतीक और रसनिरूपण की दृष्टि से ब्रजभाषा में उनके पद स्वाभाविक और सजीव लगते हैं। उच्च कोटिके भक्त थे, इसमें दो मत नहीं है। इसी दृष्टि से पदों की मौलिक्ता में संदेह करना उनको नसमझने के बराबर है। उनके पदों में माधुर्य, कोमलतम वृत्तियों की अभिव्यक्ति, सूक्ष्मतम भावनाओं की अभिव्यंजना उनके पदों की विशेषता है। "रास" की रचना उनकी उत्सव प्रसंग की रचना है और अन्य अष्टसखाओं की तरह उन्होंने भी रास के पदों की रचना की है। अनुप्रास, अनन्वय, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी स्वाभाविक रूप से आगये हैं। काव्य की आत्मा रस है इसका उन्होंने ध्यान रखा है। ऐसा लगता है।

## छीतस्वामी

छीतस्वामी अष्टसखाओं में से एक और श्री विठ्ठलनाथ जी के शिष्य थे। वे वास्तव में तो छीतू चौबे के नाम से प्रसिद्ध थे और समर्थ गूंडे थे, परंतु भगवत-कृपा के कारण उनको श्री विठ्ठलनाथ जी का शरण मिला और उनके हृदय से निकल पड़ा -

भई अब गिरिधर सौं पहिचान ।

इससे वे छीतुस्वामी बन गये। वे प्रेम को ही ज्यादा महत्व भगवत् प्राप्ति में देते हैं।

राग नट

प्रीतम प्रीति तें बस कीनों ।
उर-अंतर तें स्याम मनोहर नेंकुहु जान न दीनों ।।
सहि नहिं सकति विछुरनो पल भरि भलौ नेमु यह लीनों ।
"छीत-स्वामी" गिरिधरन श्रीविठ्ठल भक्ति-कृपा-रस भीनों।।[1]

इसी प्रकार उन्होंने अपने गुरूको भी सर्वस्व माना जिन्होंने भगवान की पहचान कराई। श्री विठ्ठलनाथजी के अनेक पद उन्होंने बनाये हैं और नित्यसेवा तथा वर्षोत्सव के भी अनेक पद बनाये हैं। भक्ति प्राप्त हो जाने के कारण संप्रदाय के सत्संगियों के साथ संप्रदाय के संबंध में सुंदर चर्चा की और

---

1. छीतस्वामी पद संग्रह पद - 112

ज्ञान भी प्राप्त किया। ब्रजभाषा मातृभाषा तो थी, इससे हृदय के भाव अति सरलता से कीर्तन के रूपमें निकलने लगे। ये श्याम मनोहर के प्रेमपाश में बंध गये तथा भाव-प्रेरित प्रेम-पगे नेह-भीगे भावुक हृदय वाले उन्होंने स्वाभाविक कल्पना के सहारे तथा श्री नाथजी की असीमकृपा से अनेक मौलिक पदों की रचना की है। जब वे अपने आराध्य के सामने एक रस, एक रूप और तन्मय बन जाते तो वे अपना बाह्य अस्तित्व ही भूलजाते, इससे हृदय की गहराई से जो वाणी निकलती वह मधुर और मौलिक ही निकली। इनका ओसरा संध्या आरती का था तथा ये जन्मलीला के गायक थे। अंतरंग के संबंध में ये सुबल सखा तथा पद्मासखी थे। उनके रास के पद केवल 3 ही प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं :-

राग बसंत

मुकुलित बकुल मधुप-कुल कूजे, प्रफुलित कमल गुलाब फूले ।
मंगल गान करत कोकिल-कुल नव मालती लगा लगि झूले ।।
आइ जुवति-जूथ रास-मंडल खेलत स्याम तरनिजा-कूले ।
"छीत-स्वामी" बिहरत वृंदाबन गिरिधर लाल कल्पतरू - मूले।[1]

---

1. छीतस्वामी - पद संग्रह पद - 3

राग मल्हार

नागरी नवरंग कुवँरि मोहन-संग नाचै ।
कटि-तट पट किंकिनी कल नूपुर-ध्वनि रूनझुन करैं
नितंत, करत चपल चरन-पात घात साचै ।।
उदित मुदित गगन सघन घोरत घन-भेद भेद ,
कोकिल कल गान करति पंचम सुर बाँचै ।।
"छीत-स्वामी" गोवर्धननाथ हाथ वितरत रस,
वर विलास वृंदावन-वास प्रेम राचै ।।[1]

राग ईमन

लाल-संग रास-रंग लेत मान रसिक खेनि,
गुगुता, गुगुता, तत तत तत थेईं थेईं गति लीने ।।
सरिगमपधनी, गमपधनी धुनि सुनि व्रजराज-कुंवर गावत री ।
अतिगति जतिभेदसाहित ताननि नननननन अनिअनि गति लीने ।।

उदित मुदित सरदचंद, वंद छुटे कंचुकी के
वैभव भुव निरखि-निरखि कोटि काम हीने ।।
विहरत बन रास-बिलास, दंपति वर ईषद हास
"छीत-स्वामी" गिरिधर रस-बस करि लीने ।।[2]

---

1. छीतस्वामी पद संग्रह - पद 4
2. छीतस्वामी पद संग्रह - पद 5

उनके तीनों रास के पदों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि केवल स्वाभाविक रूप से ये पद बनाये हैं। सुंदर नवीन वातावरण में युवतियों के जूथ के साथ भगवान नृत्य करते हैं और यमुना का किनारा है। दूसरे पद में श्रीराधा श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करती है और उनकी किंकिनी तथा नूपुर की मधुर ध्वनि सुनाई देती है। श्रीकृष्ण स्वयं सभी को अपने प्रेमरस का दान देते हैं और आनंदकरते हैं। तीसरे में मृदंग की ध्वनि के साथ रास की गति है तथा संगीत के स्वर सरिगपधनी के साथ गीता का आलाप हो रहा है। उस समय शरद का चंद्रोदय हुआ है और राधा-कृष्ण नृत्य करते हैं।

इस प्रकार तीनों पदों में खास कोई विशेषता न होने पर भी रचना में उनकी अनन्य भक्ति आंतरिक प्रेरणा और इस कारण मौलिकता का दर्शन होता है। छीतस्वामी में भक्ति और भक्त की मात्रा ज्यादा थी, काव्यत्त्व की भावना कम। अत: उन्होंने जो पद बनाये, उनमें उनकी भक्ति का ही दर्शन अधिक होता है। वे उच्च कोटि के भक्त थे, इसमें दो मत नहीं है। इसी कारण से उनके पदों की मौलिक्ता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके रास के पदों में भावना, माधुर्य, गति, संगीत सुमधुर वातावरण, स्वाभाविक कल्पना और कोमल शब्दोंवाली भाषा का दर्शन होता है।

## निष्कर्ष

ऊपर हमने आठों सखाओं के रास के पदों का अभ्यास किया है और प्रधान रूप से हमने देखा कि उनमें भक्ति की ही अधिक प्रधानता है। वास्तव में ये आठों सखा पहले भक्त थे। कवि बनना और कविता करना उनका ध्येय नहीं था - आदर्श नहीं था। उनका आदर्श था अपने आराध्य के सौंदर्य का और उनकी लीला का गान करना था। सूर, परमानंद तथा नंददास ने तो भागवत का पूर्ण रूपसे अनुसरण किया है। अन्य लोगों ने अपनी सजीव एवं स्वाभाविक कल्पना का अधिक उपयोग किया है। फिर भी ज्ञान और समझ के कारण पदों की रचना में अंतर पड़ जाता है। सभी को आंतरिक प्रेरणा है, गुरूकृपा और आराध्य की अनुकम्पा भी है, इसी कारण से उनकी रचनाओं में मौलिक्ता का दर्शन होता है। इसलिए यह स्पष्ट कह सकते हैं कि अष्ट सखाओं के रास वर्णन में मौलिकता है इसमें दो मत नहीं है।

Chapter - 5



अध्याय पंचम

पुष्टि संप्रदाय में रास का स्वरूप और रास की वर्तमान स्थिति।

रास का संप्रदाय में जो स्वरूप आज प्रचलित है, वह परंपरागत है और प्राचीन समय में जो रास प्रचलित था जिसमें धार्मिक भावना का प्राधान्य था, उसी के संकेत के रूप में रास आज मंदिरों में अस्तित्व में है। वास्तव में देखा जाय तो रास भक्ति का प्रतीक है। भगवान की भक्ति किस प्रकार प्राप्त करना उसी का उसमें निर्देष है। ब्रम्हसंबंध के बाद पुष्टि संप्रदाय में भक्त को भगवान की भक्ति का अधिकार मिलता है। वह अधिकारी बनता है, वैष्णव बनता है। इससे श्रीकृष्ण की सेवा का प्रारंभ करता है। धीरे धीरे वह मानसी सेवा को प्राप्त करता है और कीर्तन सेवा का सहारा लेकर अपने आराध्य का सानिध्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। भक्ति के क्षेत्र में रास का अत्यधिक महत्त्व है। तथा इसके साथ "चीरहरणलीला" प्रसंग अति महत्व का है। संसारी जीव अविधा माया के कारण भौतिक सुख के पिछे दौड़ता है, परंतु सत्संग के कारण विद्या माया के आवरण में आता है और अन्त में भक्ति के मार्ग का यात्री बनता है।

भगवान ने "चीरहरणलीला" द्वारा इस बात की ओर संकेत किया है कि "जीव और मेरे बीच जो सांसारिक जड़ आवरण है, वह दूर हो जाना चाहिए। जब तक आवरण है तब तक वह मेरी भक्ति को नहीं

प्राप्त कर सकता और न मेरा नैकट्य प्राप्त कर सकता है। इसीलिए भगवान ने गोपियों के चीरों का हरण कर लिया और जल बाहर निकलवाकर दोनों हाथ ऊँचा करवाकर अपने को प्रणाम करवाया, इससे भौतिक आवरण भगवान ने दूर कर दिया। तभी तो भगवान का नैकट्य गोपियों को प्राप्त हुआ।

रास के प्रसंग में भगवान मुरली बजाते हैं जब कि आकाश में पूर्णिमा का चाँद होता है तब गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुनकर दौड़ आती हैं और भगवान के साथ खेलती हैं, इससे "अहं" प्राप्त होता है। इसी "अहं" को दूर करने के लिए भगवान अंतर्धान हो जाते हैं। जब अहं पिघल जाता है तब फिर से भगवान स्वयं गोपियों के बीच आ जाते हैं और महारास खेलते हैं। ये सारी क्रियाएँ आध्यात्मिक क्षेत्र में और भक्ति के क्षेत्र में अति महत्त्व की हैं। भक्ति में "अहं" नहीं होना चाहिए। इसके लिए मानसी सेवा के द्वारा अतिकठिन तप के जरिये "अहं" को दूर कर देना चाहिए। तभी भगवान का साक्षात्कार होता है। अन्त में रास का आनंद लिया जाता है।

पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में रास की परंपरा चली है। श्रीमद्भागवत में रास का जो चित्र है, जो स्वरूप है, उसी को सजिव और परंपरागत रखने के लिए मंदिरों में रास का आयोजन किया जाता है।

इसके लिए मैं विभिन्न मंदिरों की मुलाकातें लीं और वहाँ के मुख्याजी जो भगवान की सेवा करते हैं उनके साथ रास के संबंध में चर्चा भी की। तथा पुष्टि संप्रदाय के विद्वान एवं भरजादी जो वैष्णव है ऐसे श्री के.का. शास्त्रीजी, श्री चंपकलाल नायक, श्री इन्दीरा बेहीजी के शिष्य श्री बालकृष्ण शास्त्रीजी के साथ वर्तमान समय की परिस्थिति पर परामर्श किया जो इस प्रकार है।

पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में रास का स्वरूप आज जो देखा जाता है, वह श्रीमद्भागवत की परंपरा के अनुसार है। रास भक्ति का प्रतीक है। जब तक जीवात्मा भगवान के साथ एकात्मकता स्थापित नहीं करता, तब उसे साक्षात्कार भी नहीं होता। इसके लिए रास एक उत्तम साधन है। आज मंदिरों में रास का आयोजन आश्विन शुक्ला 15 के रात को किया जाता है। इसे महारास का आयोजन कहा जाता है। इसी दिन भगवान को इसका श्रृंगार किया जाता है। सफेद सुनहरी जरी की काछनी, केसरी जरी का सूथन, मेघश्याम चोली, लालदरियाई वस्त्र का पीताम्बर, श्रीमस्तक पर हीरे का मुकुट, हीरे का आभरण, सफेद ठाड़ वस्त्र, जड़ाउ हीरे का चौखटा, पिछवाई चित्रकला वाली जिसमें महारास अंकित होता है और दो-दो गोपियों के बीच माधव दिखाई देते हैं।

यह श्री नाथजी के मंदिर के भगवान श्री नाथजी के श्रृंगार हैं।

विशेष में इस दिन संध्या में शयन के दर्शन नहीं होते, डोलतिवारी, मणिकोठा, और रतन चौक में बिछात होती है। दीवालगिरि और चंदोवा सफेद वस्त्र के होते हैं जिसमें तारे और चन्द्रमा अंकित होते हैं। सामग्री एवं साजआदि सफेद होते हैं। अनोसर में भोग रखा जाता है। चन्द्र दर्शनान्तर शयन आरती होती है। कमल चौक में ध्रुव बारी के नीचे संगीत का सारा सामान रखा जाता है, जो रातभर वहीं रहता है।

रात के समय पर महारास के कीर्तन गाये जाते हैं। इस प्रकार श्री नाथजी के मंदिर में रासोत्सव का आयोजन किया जाता है। कुछ वैष्णव भक्त लोग मध्यरात्रि तक रास खेलते हैं और भक्त वैष्णव प्रेक्षकों के हृदय में रास की भावना को जीवित रखते हैं।

संप्रदाय के कुछ मंदिरों में तो उमर के अनुसार भगवान का श्रृंगार कर रात्रि के समय बालक-बालिकाओं को कृष्ण-गोपियों की वेषभूषा धारण करवाकर और प्रत्येक के हाथमें खिलौने के प्रकार के संगीत के विविध वाद्ययंत्र देते हैं और वर्तुलाकार में घुमवाते हैं। इसी प्रकार "रास" भावना प्रत्यक्ष की जाती है।

कहीं कहीं तो युवक युवतियाँ कृष्ण-गोपी बन दंड रास लेते हैं और साथ में अष्टछापियों के कीर्तन गाते हैं। इससे एक अनूठा दृश्य उपस्थित होता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में रास का विविध रूप से आयोजन किया जाता है।

इस प्रकार जो "रास" भावना मंदिरों में प्रचलित है, उसमें भी समय की गति के साथ परिवर्तन और परिवर्द्धन आया है। जिस मंदिर में धन राशि का कोई अभाव नहीं वहाँ "रास" के आयोजन में अत्यधिक खर्च किया जाता है और रास का वास्तविक दृश्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया जाता है। कहीं कहीं तो धन के अभाव में केवल "महारास" के पद गाये जाते हैं, तो कहीं कहीं भक्त जनों में से कृष्ण-गोपी का वेष धारण करवाया जाता है और अनेक वाद्ययंत्रों के साथ रास खिलाया जाता है। ऐसे दृश्य को देखने के लिए अनेक लोग आते हैं इनमें कुछ तो केवल "दर्शनार्थी" ही आते हैं।

रास की भावना सजाग रखने के लिए कुछ मंडलियाँ स्वतंत्र रूपसे काम करती हैं और रासोत्सव की रात को ऐसी मंडलियाँ अपने

कलाकारों के साथ और पूरे साज के साथ मंदिरों में आती हैं और रातभर अनेक वैष्णवभक्त और प्रेक्षकों के मनोरंजन के लिए रास खेलते हैं। इसमें कला और संगीत का सुयोग अवश्य होता है, परंतु भक्ति की भावना न्युनाधिक मात्रा में रहती हैं।

संप्रदाय के भरजादी जो वैष्णव होते हैं, उनसे पूछने पर पता चला है कि सच्चा वैष्णव अवैष्णव कलाकार द्वारा आयोजित रास का दर्शन नहीं करता। परंतु वर्तमान समय में मंदिरों में भी व्यापारीकरण की भावना का प्राधान्य हो गया है। यह केवल पुष्टि संप्रदाय की बात नहीं है, प्राय: सभी धर्मों में ऐसा सड़ा घुसा है कि जनता से धन किस प्रकार खींचना। हाल ही में एक प्रसिद्ध पुष्टि संप्रदाय के मंदिरवाले आचार्य ने महारास का आयोजन शहर के बड़े थीएटर में करवाया। इसके लिए ऊँचे मूल्य की टिकटों का भी आयोजन हुआ। इस रासोत्सव में अष्टछापियों के कीर्तनों का गान हुआ, और कलाकारों के द्वारा "महारास" खेला गया। इसके प्रचार के लिए अखबार में विज्ञापन भी दिया गया। जब यह परिस्थिति है, तब आगे चर्चा करना निरर्थक है। "रास" की जो भावना मंदिरों में होनी चाहिए उसे थीएटर तक पहुँचाना कितना उचित है, यह तो संप्रदाय ही कह सकता है, अन्य नहीं।

यहाँ कहने का तात्पर्य यह कि "रास" में आध्यात्मिक एक भक्ति की भावना है, वह ऐसे प्रसंगों के द्वारा श्रृंगार की भावना में परिवर्तित हो जाय तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

पश्चिम के लोग जो "इस्कोन" के नाम से श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार करते हैं, वे भी रास्ते और गलियों में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" गा गाकर नाचते हैं। ये गानेवाले युवक-युवतियाँ होती हैं। परंतु इस ढंग से गाते हैं कि सुनने और देखने वालों के हृदय में धर्म की भावना पैदा हो जाय। वे लोग भी "महारास" का आयोजन करते हैं, पूरा वास्तविक एवं स्वाभाविक धर्म का वातावरण, संगीत की सौरभ और कला की अभिव्यक्ति, तीनों का त्रिवेणी संगम उनके महारास में देखा जाता है।

संक्षेप के कहने का यह कि वर्तमान समय में पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में वर्षोत्सव के रूप में महारास का आयोजन मंदिर की आर्थिक परिस्थिति पर किया जाता है।

संभव है समय की गति के साथ इसमें भी परिवर्तन हो जाय। परंतु इतना निश्चित है कि मूल श्रीमद्भागवत के महारास की भावना इसमें से लुप्त नहीं हो सकती।

Chapter- 6.



अध्याय षष्ठ

## उपसंहार

संप्रदाय में श्रीमद्भागवत की "रासपंचाध्यायी" का जो महत्व है, उसका वर्णन करना निरर्थक है। "रासपंचाध्यायी" केवल श्रीमद्भागवत में ही नहीं, भक्ति के क्षेत्र में, आध्यात्मिक क्षेत्र में प्राण के समान है। हृदय स्वयं श्रीकृष्ण हैं और वृत्तियाँ गोपियाँ हैं जो श्रीकृष्ण के साथ घुमती रहती हैं। भक्ति के क्षेत्र में "रास" अति महत्व की वस्तु है। भगवान के प्रति आकर्षण उनकी सुंदरता और कार्य के कारण वह मुरली की ध्वनि है और विद्या माया का इससे बंधन प्राप्त हो जाता है। सांसारिक वैराग्य प्राप्त हो जाने पर भगवान अतिनिकट आते हैं और इससे जीव को "अहं" प्राप्त होता है। भक्ति के क्षेत्र में "अहं" भगवान से दूर जाना है। परंतु उनका नामस्मरण, मानसी एवं कीर्तन की सेवा से वही "अहं" उस समय अदृश्य हो जाता है, जबकि वह जीवात्मा भगवानमय बन जाय। इसी एक चिंतता के कारण वह अपने आपको भी खो देता है और तभी साक्षात्कार का आनंद प्राप्त करता है वह आनंद "रास" का आनंद है।

अष्टछापी कवियों ने श्री नाथजी के मंदिर में अपने अपने ओसरे के समय पर बैठकर भगवान की उनके मूल रूप में झाँकी पाई और उसी झाँकी का अपने कीर्तनों में वर्णन किया तथा गान भी किया। इस प्रकार अष्टसखाओं ने अनेक पद बनाये। रासोत्सव तो मंदिर का बड़ा उत्सव

होता है। इसीलिए उसका भी उन लोगों ने खास ध्यान रखा। वे पहले भक्त थे, बाद में कवि। उनका पद बनाकर यश प्राप्त नहीं करना था, परंतु केवल अपने आराध्य की भक्ति करना था। अतः उनके महारास के पदों में भक्ति और ज्ञान का समन्वय हुआ है। सूरदास, परमानंददास, नंददास जैसे भक्तों नेमहारास की वास्तविक स्वरूप में अपने काव्य में उतारा है। नंददास इस दिशा में प्रथम है। श्रीमद्भागवत और नंददास की "रासपंचाध्यायी" में कोई अंतर नहीं है। आज भी मंदिरों में रासोत्सव के समय पर इन भक्त कवियों के पद्य गाये जाते हैं। इन सखाओं के पदों में जो मौलिकता है, वह उनकी आंतरिक प्रेरणा और भक्ति का परिणाम है।

पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में नित्यसेवा के समय पर तो अष्टसखाओं के कीर्तन गाये जाते हैं, इसके साथ साथ वर्षोत्सव के समय पर भी इनके कीर्तन गाये जाते हैं। रास का आयोजन संगीत के साथ किया जाता है। भगवान को भी ये ही पद सुनाये जाते हैं। तथा श्रृंगार भी ऐसा किया जाता है कि उसमें भी रास का दर्शन हो जाय।

रास की उत्पत्ति और रास के स्वरूप पर आगे के अध्यायों में विचार किया गया और आज जो रास का स्वरूप है, यह भी दिखाया गया। दोनों में जो अंतर है यह भी स्पष्ट हो गया। इस्कॉन जैसी संस्था आज सारी दुनिया में फैल गई है और हर जगह पर भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार करती है।

पश्चिम की दुनिया के भौतिकवादी लोग श्रीकृष्ण की भक्ति में डूब गये हैं। कई जवान युवक-युवतियाँ साधु-साध्वी बन गई हैं और अपना सारा जीवन श्रीकृष्ण की सेवामें अर्पण कर दिया है। यही उनकी भक्ति है। इनके मंदिर इतने भव्य होते हैं कि लोग अपने आप उनकी ओर आकर्षित होवे। श्रीकृष्ण के सौंदर्य तत्त्व को इन लोगों ने अच्छे ढंग से निभाया है। रात्रि के समय विविध संस्थाओं और मंडलों के आमंत्रण से भजन करने जाना और रास खेलना इनका प्रधान कार्य है। सामान्य जनता में धर्म की भावना जाग्रत रखने के लिए और बनाये रखने के लिए ऐसे प्रसंगों का लोगों के बीचमें होना आवश्यक है। यही कारण है कि पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों की अपेक्षा इन लोगों का अधिक प्रचार है।

अंत में इतना ही कहना है कि अष्टछापियों के पदों मे जो मौलिकता है वह उनकी आंतरिक प्रेरणा और अनन्य भक्ति के कारण है जो गुरूकृपा औरआराध्य की अनुकम्पा है। इन लोगों ने रासपंचाध्यायी का अनुवाद नहीं किया, केवल भावानुसरण किया, प्रसंग लिए और उसमें अपनी

भक्ति मिलाई तथा हृदय की भावना को वाणी का रूप दिया। वही उनकी कीर्तन सेवा हुई। आज भी अष्टसखाओं के कीर्तन का प्रचार अत्यधिक है।

Bibliography.



## संदर्भ ग्रंथ सूची

संस्कृत


1. काव्यानुशासन - वाग्भट ।
2. काव्यालंकार - भामह ।
3. कवि दर्पण - हेमचन्द्र ।
4. गीतगोविन्द - जयदेव ।
5. छन्द:कोश - रत्नशेखर ।
6. छन्दोनुशासन - हेमचन्द्र ।
7. तैत्तिरीयोपनिषद् -
8. नाट्यदर्पण - रामचन्द्र ।
9. ब्रम्हपुराण
10. बृहतक्रम संदर्भ - जीवगोस्वामी ।
11. भागवतगूढार्थदीपिका - श्रीधनपति ।
12. भागवतचंद चंद्रिका - श्रीमद्वीरराघवाचार्य ।
13. भावभावविभाविभाविका - श्रीरामनारायण ।
14. भावप्रकाशन - शारदातनय ।
15. महाभारत ।

16. श्रीमद्भागवत ।

17. श्री नारदप्रणीत-भक्तिसूत्र ।

18. श्री कृष्णनाम संकीर्तन - श्रीवल्लभाचार्यजी ।

19. श्रीमद्भगवतगीता

20. सारार्थदर्शनी - श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्ति ।

21. सिद्धान्त प्रदीप - शुकदेव ।

22. सुबोधिनी - श्री वल्लभाचार्यजी ।

23. संस्कृत हरिवंश पुराण ।

24. सरस्वती कंठाभरण ।

25. विष्णुपुराण ।

26. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ ।

हिन्दी

1. कामायनी - जयशंकर प्रसाद ।

2. कीर्तनप्रणाली के पद ।

3. कृष्णदास पदसंग्रह - सं. व्रजभूषणलालजी ।

4. गोविन्दस्वामी पद संग्रह - सं. व्रजभूषणलालजी ।

5. छीतस्वामी पद संग्रह - सं. व्रजभूषणलालजी ।

6. चतुर्भुजदास पद संग्रह - सं. व्रजभूषणलालजी ।

7. गुरू ग्रंथसाहब

8. परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय - डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल ।

9. परमानंददास ‡पदसंग्रह‡ - सं. डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल ।

10. रासपंचाध्यायी - नंददासकृत ।

11. सूरसागर भाग - 1 - नागरी प्रचारिणी प्रकाशन

12. सूरसागर भाग - 2 - " " "

13. सूर ग्रंथावली भाग - 1 - सं.पं. सीताराय चतुर्वेदी

14. सूर ग्रंथावली भाग - 2 - " " "

15. सूर ग्रंथावली भाग - 3 " " "

16. सूर और उनका साहित्य - डॉ. हरवंशलाल शर्मा ।

17. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेन्द्र ।

18. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल ।

19. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकीशन खंडेलवाल ।

20. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा ।

गुजराती

1. धोल पद संग्रह - सं. चंपकलाल नायक, संगीत विशारद ।
2. गुजराती साहित्यनो इतिहास - ग्रंथ-1
   रास अने फागु साहित्य - श्री के.का. शास्त्री
3. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह
4. श्रीकृष्णनुं वैवाहिक जीवन अने रासलीला
   लेखक :- उपेन्द्रराय ज. साडेसरा ।
5. श्रीरासपंचाध्यायी - ले. टीकाकार श्री नथुराम शर्मा ।

प्राकृत

1. अपभ्रंशकाव्यत्रयी - सं. गांधी ला.भ. ।
2. सन्देशक रासक - सं. हरिवल्लभदास भायाणी ।
3. बालचरित - भास

तामिल

1. तिल्लप्पदिकरम् :-